❀ श्रीः ❀

हृद्यपद्यशतकम्

भक्ति-ज्ञान-विराग-नीतिविषयम्

पं० नाथूरामशास्त्री

Nathyram Shastri
Hridapodda'shatakam;
Bhakti-Gyan-Virag-
neetivisayam.

हृद्यपद्यशतकम्

भक्ति-ज्ञान-विराग-नीतिविषयम्

दाधिमथ (दाधीच) पं० नाथूरामशास्त्रिविरचितम्

प्रकाशक—

नाथूरामशास्त्री

प्राप्तिस्थान १— पं० नाथूरामशास्त्री
सक्करकंदगली ७/२१, वाराणसी

२—मंत्री श्रीदधीचि कामधेनुशाला बागली
जि० देवास (मध्यप्रदेश)

हृद्य-पद्य-शतकम्

नाथूराम शास्त्रिविरचितम्

भक्तिज्ञानवैराग्यनीतिविषयम्

स्वकृतसान्वयाव्यक्तार्थबोधिन्याख्यया, संस्कृतव्याख्यया
सरलार्थप्रकाशिकाख्यया भाषाटीकया च
समेतम् ।

तच्च

वाराणसीहिन्दूविश्वविद्यालयाध्यापकव्याकरणाचार्य, पं. रामप्रसाद शास्त्रिभिः
काशीसंस्कृतविश्वविद्यालयाध्यापकसाहित्याचार्य पं. महादेवशास्त्रि-
भिश्च संशोधितम् ।। वाराणसी सदाशिवसंस्कृतमहा-
विद्यालयप्रधानाध्यापक पं. क्षेमेन्द्रजोशी
ज्योतिषाचार्येणाङ्कितम् ।

हिन्दी भूमिका

प्रत्येक सत्संगी पुरुषों को विदित ही है कि स्वकर्मानुसार ८४ लक्ष योनियों में भटकता हुआ जीवात्मा दैववश भगवत्कृपा से नर जन्म पाता है। यह मोक्ष द्वार है। इसको पाकर भगवत् प्राप्ति करना, जन्म-मरण-बन्धन-रहित होजाना ही इसकी सफलता है। अन्यथा कितना ही विद्वान्, धनवान् हो सब व्यर्थ है और वह आत्मघातक है। भगवान् ने भागवत एकादश स्कन्ध में उद्धव के प्रति कहा है—

"पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्म हा।"

इत्यादि वचनों से मोक्ष प्राप्ति करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। इस कलिकाल में मोक्ष के साधन ज्ञान-योग-वैराग्य आदि सभी कलि प्रभाव निर्बल होने से काम क्रोधादि द्वारा पीड़ित होकर स्वकार्य में असमर्थ हो रहे हैं। कलिकाल में तो भक्ति ही प्रधान मानी गई है—

"कलौतु केवलं भक्तिर्ब्रह्म सायुज्य कारिणी।"
"कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरस्थितः॥"

इत्यादि वचनों से भक्ति ही सरलतापूर्वक मोक्षदायक है। अतः भक्ति प्रकरण शतक में प्रथम लिखा गया। इसमें भक्ति का स्वरूप, फल और लक्षण, भक्त के लक्षण, भक्ति के भेद नाम महिमा आदि कितने ही विषय सुचारुरूप से वर्णित है। यद्यपि ज्ञान वैराग्य कलिकाल से निर्बल है तथापि अपने निर्बल पुत्र ज्ञान वैराग्य के विना भक्ति अकेले नहीं रह सकती। अतः ज्ञान वैराग्य प्रकरण भी दिये गये हैं। ज्ञान प्रकरण में जीव का स्वरूप तथा जीव की मुक्ति कब और कैसे होती है, लिंग देह का स्वरूप, लक्षण और अक्षरब्रह्म का स्वरूप, पंचपर्वा अविद्या, गुण विवेचन आदि बहुत से विषय दिये हैं एवं वैराग्य प्रकरण में भी सुन्दर वर्णन हुआ है। कलिकाल से दुराचारी मनुष्यों को सदाचार बोधक सन्मार्ग दर्शन रूप नीतिप्रकरण को भी आवश्यक समझकर वह भी दिया गया है। लोकोपकार के लिए यह शतक रचा गया है। इससे जनता अधिक से अधिक लाभ उठाये जिससे रचयिता की आत्मा को पूर्ण सन्तोष हो।

निवेदक

पं० नाथूरामशास्त्री
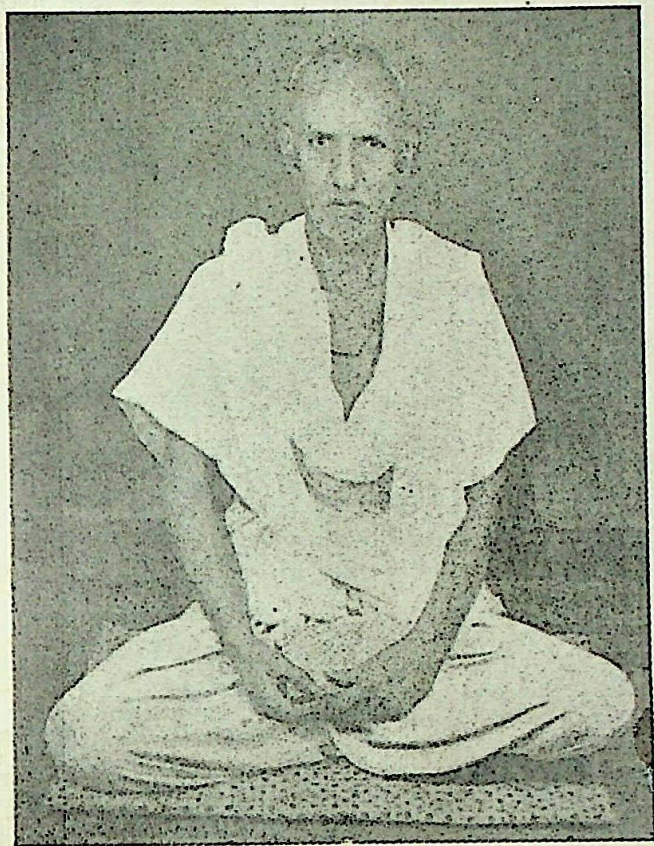
पं० नाथूरामशास्त्री

भूमिका

ननु विदितमेवैतद्विपश्चितां यदसारे संसारे प्राक्तनकर्मवशान्नानायोनिषु भ्रमन् जीवो निर्वाणद्वारभूतं देवदत्तमिदं नृशरीरं लब्ध्वा यो जन्ममरणरूपभवबन्धनं छिन्द्यात्, स एव धीमान् पुमांश्चान्यथा धीताखिलनिगमागमोप्यबुध आत्महा च। उक्तं च भगवता भागवतैकादश स्कन्धे—

"पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा"

निर्वाणसाधनं कलौतु केवलं भक्तिरूपमेव प्रधानम्।

तदुक्तम्—

कलौतु केवलं भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी। कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्। "कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरस्थितः" इत्यादि वचनैर्भक्तेरेव प्राधान्यम्।

कलिकालप्रभावप्रबलकामाद्यरिपीडितनिर्बलज्ञानादीनामप्राधान्यम्। तस्माद्भक्तेः संक्षेपसाररूपं भक्तिप्रकरणं मया व्यलेखि। निर्बलाभ्यामपि ज्ञानवैराग्याभ्यां सुताभ्यां विनैकिका भक्तिर्न तिष्ठासति तत् ज्ञानवैराग्यप्रकरणे अप्यङ्किते। करालकलिकालदुराचाररतनराणाम् शिक्षासन्मार्गदर्शनमपि आवश्यकमिति नीतिप्रकरणमप्यदायि। एवं प्रकरणचतुष्टयं भगवत्प्रसादात् यथामतिविरचितं अस्मिन् शतके विषयाणां अगाधत्वेन अधीतिरहितस्य बोधाभावात् यत् किमपि सार्गलमनर्गलं वा भवेत् तदनुकम्पया सोढव्यं विपश्चिदभिरिति निवेदयति।

विदुषामनुचरानुचरो
पं० नाथूराम शर्मा दाधिमथः

'एतद् ग्रन्थविषये वाराणसीस्थप्रधानविदुषां सम्मतयः ।'

श्रीमद्भिः सुगृहीतनामधेयैः प्रियसुहृद्भिः पण्डितप्रकाण्डैः श्रीनाथूराम-दाधीचैर्विरचितं हृद्यपद्यशतकनामानं प्रबन्धमान्तमनुवाच्य संप्रसन्न स्वान्तोऽहमेतेषां भक्तिज्ञानविरागेषु संवर्धमानं प्रावीण्यं संप्रसन्नकाव्यनिर्माण वैचक्षण्यं लोकोपकारवैयग्रीं च समनुभूयैतेषां श्री भगवत्करुणातरङ्गितापाङ्गपात्रतामाशासानोऽस्य प्रबन्धस्य प्रकाशनवितरणादेरावश्यकतामत्र धनिनां प्रवृत्तेरावश्यकतां मन्यमान एतत्कार्यनिर्वहणेन लोकोपकारप्राग्भारंच तेषामवश्यं भाविनं ज्ञापयन् एतदग्रन्थाध्ययनपारायणादिना लोकः कार्त्तार्थ्यं विन्दत्विति अभिप्रैमि ।

दिनांङ्क १८-३-१९६२

इति विदुषां विधेयः
के. वि. नीलमेघाचार्यः
वेदान्तप्राध्यापकः
वाराणसेयसंस्कृतविश्वविद्यालयः
वाराणसी

आजानसिद्धप्रतिभाप्रभावमेदुरैः श्रीनाथूरामदाधीचैर्विरचन कर्मतामानीतं हृद्यपद्यशतकाभिधानमनुगतार्थसार्थं मनस्याधाय समुच्छलद्रसमाधुर्यं समास्वाद्य रसनिर्भरसंभृतान्तरङ्गोऽस्मि संजातः । अत्र शतके एकैके श्लोकाः स्तबकितप्रबंधसंभारभासुराः प्रीणयन्ति सहृदयधुरीणान् उपदेशलावण्योल्लसितकलेवराः समुपदिशन्ति शिक्षणीयेभ्यः कमपि वृत्तचातुर्यचंचारितचारिमाण भक्तिभाक् सौभाग्यसमुदञ्चितान् भाग्यभाजो निमज्जयन्ति भगवदाल्हादसौन्दर्यसरोवर इति अस्य प्रथितमहिम्नः प्रबन्धधन्यस्य प्रसृमरं यशोराशिं कामयमानोग्राह्यतां च दैनंदिनीम् विद्वत्तल्लजेषु स्पृहयन् भगवतो भवानीजानेः श्री विश्वनाथादस्य चिरंतनमायुः सश्लाघोल्लाघं वाञ्छति ।

महेश्वरानन्द सरस्वती
श्री काशीपीठाधीश्वरः श्री शङ्कराचार्यः
धर्मसंघे दुर्गाकुण्डे वाराणस्याम्
१२ फा. शु. रवौ २०१८ वि.

अहमपि ग्रन्थमिमं सुचारुतरं मन्ये प्रचारंचास्याभिवाञ्छामीति ।

महामहोपाध्याय
गिरिधर शर्मा चतुर्वेदः

श्रीमद्भिः दाधिमथैः सुकविभिर्विद्वद्वरवाराणसीस्थविद्वज्जनसमधिगत शास्त्रतत्वैर्नाथूरामशर्मभिर्विरचितं हृद्यपद्यशतकं सर्वलोकोपकारकं धर्ममोक्षादिप्रापकं चेति मन्यते ।

पूर्णचन्द्राचार्यः
व्या. वाचस्पतिः भूतपूर्व प्राध्यापकः
श्री रामानुजमहाविद्यालये वाराणस्याम्

श्रीमद्भिः पण्डितप्रवरैर्नाथूरामदाधीचमहोदयैर्विनिर्मितं हृद्यपद्यशतकाभिधं काव्यं भगवद्वर्णनपरमभिपश्यतां नः प्रसीदति चेतः । भगवद्यशोवर्णनं नवविधभक्त्यन्तर्गतत्वात् जगन्मङ्गलकरमिति कस्य वाऽविदितम् । अत एवं विधस्य पुस्तकरत्नस्य मुद्रणादिना प्रकाशनमपि भगवत्कैङ्कर्यरूपमेवेति । तत्कर्तृणां मङ्गलावहं भवति श्रीशतुष्टिकरं चेति मे मतिः । इति सहर्षं निवेदयति ।

श्रीराजेश्वर शास्त्री द्रविडः
फा. शु. १४ रवौ २०१८ वि.

श्रीमद्भिर्भागवतैकप्राणैर्विद्वद्वरेण्यैः श्रीनाथूरामदाधीचमहोदयैर्विरचितं हृद्यपद्यशतकाभिधानं काव्यं सामस्त्येनावलोक्य परं प्रसीदति मे मनः । अत्र ज्ञानवैराग्यसहितभगवद्भक्ति समुल्लासः पदे-पदे अनुभूयते । अल्पीयस्याकारे निबन्धेस्मिन् काव्ये भावगरिमाणमालोच्य अनया कृत्या लोको बहूपकृतो भविष्यतीति मन्ये सहृदयाधनिनोऽस्य ग्रन्थरत्नस्य प्रकाशे मनोयोगमवश्यं दास्यन्ति लोकद्वयलाभायेति सुहृदं विश्वसिति ।

रामप्रसाद त्रिपाठी
फा. शु. १३ रवे. २०१८ वि. व्या. अ. स. अ. त. वि. का. हि. वि. वि.
वाराणस्याम्

कविवरश्रीनाथूरामदाधीचमहाभागानां भगवत्सपर्यापर्यायानासान्यविषयाभि-षङ्गाजानविशुद्धशान्तस्वान्तसततविश्रान्ताशेष ब्रह्माण्ड व्यापृति श्रान्त भगवदनुरक्तानाम् अपभ्रंशापाकृति साधु शब्द व्याकृति पुरस्सरा विविदग्धे पद्य विकृति विस्मापित विद्वद्वराप्रतिमानप्रतिभामनुगृह्णतां देवर्तियङ्नरादिषु समेषु भागवतीं बुद्धितादात्म्येनानुभवतामुपकृत्यपकृती अनपेक्ष्य परोपकृति बद्धव्रतानां हृद्यपद्यशतकं नाम ग्रन्थरत्नं भक्तिज्ञानविरागनीतिरूपान् विषयान् वर्ण्यत्वेनो-द्दिश्य चतुर्भिः प्रकरणैर्विरचितं मया स्थालीपुलाकन्यायेन आकलितं कर्णयोरा-भरणमाप्यायनंच । इदञ्च भागवतस्य पयः पयोधेर्नवनीतायमानमवश्यमेव विद्वन् मानसहृष्टं विस्मापयिष्यते किमुत भावनयाऽनुभूतमिति मे सुदृढ़ः सर्गः इति विदुषोऽस्यालोकेऽध्येयम् विरमामि ।

रघुनाथ शास्त्री

वा. स. वि. विद्यालय वाराणस्याम्

वेदान्त विभागाध्यक्षः १९-३-६२

ऊपर लिखी हुई ग्रंथ के विषय में काशी के प्रधान विद्वानों की सम्मतियों का सारार्थः—

श्रीनाथूराम शास्त्री विरचित यह हृद्यपद्यशतक नामक ग्रन्थ जिसमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य नीति विषय को वेदशास्त्र भागवत आदि ग्रन्थों का सार निकाल कर इसमें दिया है। यह ग्रन्थ बहुत ही लोक का उपकारक होगा। इसको एकाग्र चित्त से पढ़कर मनन करने से बहुत लाभ होगा।
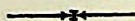
ग्रन्थ रचना कारण विषयक दो शब्द

मध्यप्रदेशान्तंगत इन्दौर से पूर्व बागली तहसील जिला देवास में मैंने स्वतः दो हजार रुपये लगाकर इस तहसील के ग्रामों से तीन हजार रुपये एकत्रित कर यहाँ श्रीदधीचि कामधेनुशाला (गोशाला) निर्माण की है। जिसमें चालीस हजार पक्की ईंटों से पैसठ फुट लम्बा उन्नीस फुट चौड़ा गोसदन बनाकर उसके ऊपर एक हजार रुपये के ऐंगल की कैंची के ऊपर पैंसट चद्दर १० फुटी लगी हैं। भृत्य गृह पृथक् है। कूप जीर्णोद्धार, सीमेन्ट का पशु-जल-पात्र तथा तृण भूमि १२½ एकड़ २० बीघा क्रय करके सब व्यवस्था राज्य नियमानुसार ट्रस्ट आदि बनाकर मैं काशीवास करने को चला आया। गोशाला में स्थाई कोष न होने से और विशेष आय के अभाव से नौकर, गोचारक आदि का व्यय देना कठिन होने से सन् १९५७ में उद्घाटन की हुई गोशाला के व्यय के चलाने के लिए वर्ष में माह दो माह काशी छोड़कर मैं बागली आकर आसपास के सब गाँवों से वार्षिक व्यय का प्रबन्ध चार वर्ष तक करता रहा। अब मेरे नेत्रों में मोतियाबिंद हो जाने से लिख पढ़ नहीं सकता तथा चलना फिरना कठिन हो गया है और वार्धक्य के कारण इस सेवा को चलाने में असमर्थ होकर भगवान् से गद्गद् वाणी से प्रार्थना करी। "हे नाथ मैं असमर्थ हूँ और आपकी यह वस्तु है। इसका स्थाई प्रबन्ध आप स्वयं करे जिससे मेरा काशीवास नहीं छूटे और इसका काम सुचारु रूप से चलता रहे। इस प्रार्थना को भगवान् ने कृपा करके सुनी तथा मेरे को सुबुद्धि दी जिससे यह ग्रन्थ रत्न निर्माण हुआ। ग्रन्थ रचना में गोशाला के निमित्त मेरे कष्ट को निवारण करने के लिए भगवत्कृपा ही मुख्य कारण है। इसका मूल्य गोशाला में ही लगेगा जिससे इसकी व्यवस्था सुचारुरूप से सदा चलती रहेगी।

ग्रन्थ प्रकाशन के लिए द्रव्यवितरण कर्त्ताजन

१०५१) शोलापुर मारवाड़ी सनातनधर्मी समाज के तरफ से सेवा की गई ।

५१) पंडित रामचन्द्र कुदाल दाधीच वैद्य, मुकाम तडवल, जिला शोलापुर ।

५०) पं० तनसुख जी खंडेलवाल, बार्शी, जिला शोलापुर ।

४१) श्री सेठ जुगलकिशोरजी सोमाणी, उज्जैनी वाले, मु० लातूर ।

५१) श्री सेठ दामोदरजी भट्टड गुलेद गुड्ड, करनाटक।

३१) पं० चुन्नीलालजी रामजीवन दायमा, कोरेगाँव, जिला सतारा ।

४१) माहेश्वरी मंडल कोरेगाँव के तरफ से ।

२५) पं० रूपनारायणजी शर्मा, ताँबा काँटा, बम्बई ।

२५) सेठ बँकट लालजी अग्रवाल, मारवाड़ी बाजार, बम्बई ।

२१) सेठ मोहनलालजी मदनलालजी काबरा, विट्ठलवाड़ी तेलगली, बम्बई ।

१३८७ टोटल

ग्राहकों से निवेदन

जो महाशय इस ग्रंथ को लेवें वे एकाग्र चित्त से धीरे-धीरे आदि से अन्त तक पढ़कर उसके भाव का मनन करें और उसके अनुसार चलने का प्रयत्न करें जिससे मनुष्यजन्म की सफलता हो और इस ग्रंथ के प्रचार के लिए प्रत्येक ग्राहक, ग्राहक को बढ़ाने के लिये कष्ट करें जिससे सब जनता का कल्याण हो और इसका द्रव्य गोशाला में लगेगा इससे गोसेवा का लाभ भी प्राप्त हो और जो महाशय मूल्य के अतिरिक्त जो अधिक गोसेवा करना चाहें वे निम्नलिखित पते पर सेवा भेजें।

पताः—

रामगोपाल ईनानी वकील

बी. ए. एल एल. बी. (एडवोकेट)

अध्यक्ष—श्री दधीचि कामधेनु शाला

मुकाम, पोस्ट—बागली, जिला देवास (मध्यप्रदेश)

विषयानुक्रमणिका

ज्ञानप्रकरणम्

वैराग्यप्रकरणम्

॥ श्रीमते रामानुजायनमः ॥

शुद्धाशुद्धिपत्रम्

श्लोक संख्या		शुद्ध	अशुद्ध
३	सं० टी०	विष्णुपदं	विष्णुपदवा
,,	,,	एकविंशतिसहस्रं-	विंशतिसहस्रं-
		षट्शतम् २१६००	सप्तशतोत्तरम् २०७००
६	अन्व०	सन्-	सम्
८	,,	क्रियेत-	क्रियेत्
,,	सं० टी०	विधीयेत-	विधीयेत्
११	भा० टी०	देने-	दने
१३	,,	में	मे
२०	सं० टी०	यस्य-	यत्य
२१	अन्व०	अबुध पृथुके	अबुधपृथके
२९	श्लो०	सुमनोहरश्रि	सुमनोहरश्री
,,	सं० टी०	ह्रेपित	ह्रेषित
३७	,,	समर्प्य	समर्प्व
४५	भा० टी०	को	की
४६	अन्व०	मुक्त्यै	अमृतप्रदा
५७	सं० टी०	घ	ध
,,	,,	अज्ञवद्	भवन्
६०	सं० टी०	अजां	अजा
६४	भा० टी०	सत्पुरुष संग सात्विक	राजसिक
,,	,,	आयुः	आयु

श्लोक सं०		शुद्ध	अशुद्ध
६८	सं०टी०	परप्रतारणाद्यर्थम्	र्धम्
७१	"	धर्म	धर्भ
७७	अन्व०	तनुत्यागं	तनुत्यागं
७९	"	यायाम्	यायाथा
८३	सं० टी०	पदवीं मार्गं	पदवी मार्गं
९३	"	मोक्षम्	मोक्षयम्
९४	अन्व०	कश्चित्	कश्चिचित्
९७	"	स्याम्	स्याम
"	भा० टी०	ब्राह्मण	ब्रह्मण
१०२	श्लो०	न्विता	न्विताः

|| श्री नवनीतप्रियो विजयते ||

हृद्य-पद्य-शतकम्

(भक्तिज्ञानविरागनीतिविषयम्)

अनुष्टुप्छन्दः—

मंगलाद्यसमभ्यर्चं सर्वप्रत्यूहनाशनम् ।
शुभलाभसुतं वंदेऽगजाशंकरसम्भवम् ॥ १ ॥

रथोद्धताछन्दः—

नंदनंदनमथेष्टदैवतं शेमुषोजुदमभिप्रणम्य च ।
विन्मुदे विमलशब्दसुन्दरं हृद्यपद्यशतकं विरच्यते ॥ २ ॥

अर्थः सरलया रीत्या यथा विज्ञायतेऽबुधैः ।
तदर्थमन्वयाख्यानं कुर्वे नत्वाजमच्युतम् ॥
देवीं दधिमथीं नत्वा धन्वदेशनिवासिनीम् ।
हृद्यपद्यस्य सट्टीकां कुर्मोऽव्यक्तार्थबोधिनीम् ॥

प्रारब्धुमिष्टस्य निबन्धस्य विघ्नध्वंसपूर्वकं परिसमाप्तिं वाञ्छन् विघ्नेशाभिवादनरूपं मंगलमाचरति ।

मंगलाद्यमिति :

अन्वयः—मंगलाद्यसमभ्यर्चं सर्वप्रत्यूहनाशनम् शुभलाभसुतम् अगजाशंकरसंभवम् वन्दे ।

संस्कृतटीका—मंगलेषु = शुभ कर्मसु आद्या पूर्वा सम्यग् अभ्यर्चा पूजा यस्य तम् । सर्वेषाम् प्रत्यूहानां विघ्नानाम् नाशनम् = नाशकम् । शुभश्च लाभश्च

तौ सुतौ यस्य स तम् । न गच्छतीत्यगः पर्वतस्तस्माज्जाताऽगजा पार्वती शं करोतीति शंकरः शिवः अगजाच शंकरश्च ताभ्यां सम्भव उत्पत्तिर्यस्य तं गजाननम्, वन्दे प्रणमामि ।

नत्वा दधीचिं ब्रह्मर्षिं ब्रह्मविद्याविदाम्बरम् ।
भाषाटीकां करोम्यस्य सरलार्थप्रकाशिकाम् ॥

हिन्दी टीका—सम्पूर्ण मांगलिक कार्यों में प्रथम पूज्य सभी विघ्नों के नाशक शुभ और लाभ के जनक पार्वती एवं शंकर के पुत्र गजानन को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

नन्देतिः—

अन्वयः—अथ शेमुषीनुदम्, इष्टदैवतं नन्दनन्दनम्, अभिप्रणम्य विन्मुदे विमलशब्दसुन्दरम्, हृद्यपद्यशतकम् विरच्यते ।

सं० टीकाः—अथ प्रारम्भे शेमुषीं बुद्धिं नुदति प्रेरयतीति शेमुषीनुत् कृष्णः तम् । "धीः प्रज्ञा शेमुषीमतिरित्यमरः" । बुद्धिप्रेरककृष्णस्येति वैष्णवनिबन्धवचनात् । इष्टदैवतं स्वेष्टदेवम् नन्दम् यशोदाधवम् नवनन्दान् वा नन्दयति आनन्दयतीति नन्दनन्दनः श्रीकृष्णस्तम् । अभितः सर्वात्मकेन भावेन तन्वा वाचा मनसा च प्रणम्य अभिवन्द्य । विदन्तीति विदो—विद्वांसस्तेषां मुदे हर्षाय, विमलाः निर्दोषाः व्याकरणाद्यशुद्धिरहिता दुःश्रवत्वादिदोषरहिताश्च ये शब्दास्तैः सुन्दरम् शोभनम्, हृद्यानि मनोहराणि यानि पद्यानि श्लोकास्तेषां शतकम् विरच्यते निर्मीयते ।

हिन्दी टीकाः—सकल जीवों की बुद्धि के प्रेरक स्वेष्टदेवता श्री कृष्णचन्द्र भगवान् को सर्व प्रकार प्रणाम कर, विद्वानों के आनन्द के लिए निर्मल शब्दों से सुन्दर "हृद्य पद्य शतक" नामक पुस्तक की रचना करता हूँ ॥ २ ॥

दोधकवृत्तम्ः—

विष्णुपदाजपगं सुतमारं सेवककल्मषपुञ्जविदारम् ।
गोपशिरोमणिनन्दकुमारं नौमि कलिन्दसुतातटचारम् ॥ ३ ॥

अन्वयः--सेवककल्मषपुञ्जविदारम् विष्णुपदाजपगम्, कलिन्दसुता-तटचारम्, सुतमारम्, गोपशिरोमणिनन्दकुमारम् नौमि ।

संस्कृतटीकाः—सेवकानाम् अर्चकानाम् कल्मषाणि पापानि तेषां पुञ्जम् समूहम् विदारयति नाशयतीति तथोक्तस्तम् । वेवेष्टि व्याप्नोति सर्वं जगदिति विष्णुर्वामनरूपस्तस्य पदमेकचरणप्रमाणं विष्णुपदमाकाशम् । "वियद् विष्णुपद वापि पुंस्याकाशविहायसीत्यमरः ।"

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।

तत्र विष्णुपद आकाशेऽजन्ति गच्छन्तीति विष्णुपदाजाः पक्षिणस्तान् पाति रक्षतीति विष्णुपदाजपो गरुडस्तेन गच्छतीति विष्णुपदाजपगो विष्णुः तम् । अथवा विष्णोर्भगवतः पदानां नाम्नां सहस्रनामादिकानामासमन्तात् जपेनावर्तनेन पुनः पुनः पाठेनेत्यर्थः । गम्यते प्राप्यते इति विष्णुपदाजपगो विष्णुस्तम् । विष्णोः पदं यया सा विष्णुपदा । न विद्यते जपो यस्याः साऽजपा विष्णुपदा चासावजपा च विष्णुपदाजपा तया गम्यते इति विष्णुपदाजपागः । अत्र कवि-नियमानुसारं माषस्थाने मषः स्थाप्यश्च्छन्दोभङ्गं न कारयेत् । इत्यत्र छन्दो भङ्गात् विष्णुपदाजपाग इत्यत्र ह्रस्वे कृते विष्णुपदाजपगस्तम् ।

अजपानाम गायत्री, जपं विनैव प्रातरेव विंशतिसहस्रं सप्तशतोत्तरम् यथोक्त-देवानाम् श्वासार्पणेनैवात्मकल्याणम् । कलिन्दस्य पर्वतविशेषस्य सुता कन्या कालिन्दी यमुना तस्यास्तटे तीरे चरति विचरति इति चरः । चर एव चारो = विचरणशीलो गूढपुरुषो वा तम् । अथवा कलिन्दसुतातटे चारयतीति कलिन्द-सुतातटचारस्तम् गा इति शेषः । सुतः पुत्रो मारो मदनो यस्य स तम् । अथवा सुताय प्रद्युम्नाय, माम् लक्ष्मीं शोभां स्वसौन्दर्यं राति ददातीति सुतमारस्तम् ।

"रा दाने" मदनो, मन्मथो, मारः, प्रद्युम्नो मीनकेतनः इत्यमरः । अथवाः—

सुतं पुत्रं मारयति नाशयतीति सुतमारस्तम् । भक्तानामिति शेषः । अत्र सुत शब्दो दार—सम्पदादिसमस्तप्रियवस्तूपलक्षकः तेन सर्वस्व नाशको हरिरिति । ननुतर्हि भक्तानामहितकरोऽयं भगवान् इति चेन्न । यस्याहमनुगृ-ह्णामि तद् विशो विधुनोम्यहमिति भगवद्वचनात् सर्वस्वनाशेन अनन्या-

श्रयोऽशरणोऽगतिकोऽशरणशरणमगतिकगतिं भगवन्तं, शरणमुपयाति। तेनात्म-कल्याणं महाननुग्रहः, गाःपान्तीति गोपाः तेषु शिरोमणिः शिरोभूषणस्वरूपः श्रेष्ठ इत्यर्थः यो नन्दस्तस्य कुमारं बालकम्।

अथवाः—

नन्दस्य कौ पृथिव्यां तद्व्रजे (स्थाने) इत्यर्थः मां लक्ष्मीं राति ददातीति नन्दकुमारस्तम् नौमि नमामि। अत्र श्लेषोलंकारोऽन्त्यानुप्रासश्च।

हिन्दी टीका—स्वभक्तों के पाप समूह के नाशक विष्णुपद (आकाश) में विचरने वाले पक्षियों के पति गरुड़ की सवारी करने वाले विष्णु अथवा विष्णु के पद (नामोंका) जप करने से प्राप्त होने वाले विष्णु यमुना के तट पर विचरने वाले और गौवों को चराने वाले, कामदेव के पिता, गोप शिरोमणि नन्द के कुमार को नमस्कार करता हूँ॥ ३॥

शालिनी :—

स्ववैंद्याभ्यामश्वशीर्ष्णात्मविद्यां, प्रादाद्दध्यङ् स्वांतनूं चामरेभ्यः।
वृत्रं हन्तुं याचकेभ्यो महर्षिर्ब्रह्मज्ञार्यं दानशौण्डं तमीडे॥ ४॥

अन्वयः—यः दध्यङ् महर्षिः स्ववैंद्याभ्यां अश्वशीर्ष्णा आत्मविद्यां प्रादात्, याचकेभ्यः अमरेभ्यः वृत्रं हन्तुं स्वां तनूञ्च प्रादात्। तं ब्रह्मज्ञार्यम् दानशौण्डं ईडे।

सं० टीकाः—स्ववैंद्याभ्यां दध्नाञ्चतीति दध्यङ् आथर्वणो दधीचिर्महर्षिः स्ववैंद्याभ्यामश्विनीकुमाराभ्यामश्वस्य हयस्य शीर्ष्णा मस्तकेन आत्मनो विद्यां ब्रह्मविद्यां प्रादात् ददौ। याचकेभ्यो भिक्षुकेभ्योऽमरेभ्यो देवेभ्यो वृत्रं तन्नामासुरं हन्तुं नाशयितुं स्वां स्वकीयां तनूं शरीरञ्च वितताार। ब्रह्म जानन्तीति ब्रह्मज्ञाः तेषु आर्यम् श्रेष्ठं ब्रह्मविदां वरिष्ठमित्यर्थः। दानशौण्डं दाने शूरं तं दधीचिमीडे स्तौमि। अत्राश्वशिरसा ब्रह्मविद्यादानं यदश्विनीकुमाराभ्यां कृतम् तत् कथा भागवते वृत्रवधप्रकरणे श्रीधरी टीकायां द्रष्टव्या। "अथर्वणः पुत्रो दधीचिः तत्र

मंत्र यजुर्वेद अध्या० १० । तमुतवादध्यङ् ऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः वृत्रहणं पुरन्दरम् ।"

हिन्दी टीका—जिन महर्षि दधीचि ने स्वकीय घोड़े के मस्तक से अश्विनीकुमारों के लिए ब्रह्मविद्या दी और याचक देवताओं के लिए अपना शरीर प्रदान किया। ऐसे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ दानशूर उन दधीचि की मैं स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥

भक्तिप्रकरणम्

शिखरिणीः—

> सुमं चिन्वन्नर्चोपकरणविशेषं तव कृते,
> महीध्रारामादावनुपगतसेवोचित सुमः ।
> अयं खिन्नः स्वीयं हृदयकुसुमं चार्प्यमुदितः,
> प्रपन्नस्त्वां विष्णोगतसकलवाञ्छो विगतभीः ॥ ५ ॥

अन्वयः—हे विष्णो तव कृते महीध्रारामादौ अर्चोपकरणविशेषं सुमं चिन्वन्ननुपगतसेवोचित सुमः सन् अयं खिन्नः स्वीयं हृदयकुसुमं चार्प्य त्वां प्रपन्नः गतसकलवाञ्छो विगतभीर्जीवः जातः इति शेषः ।

संस्कृत टीकाः—हे भगवन् तव कृते युष्मदर्थं महीं धरन्तीति महीध्राः पर्वताः आरामा उद्यानानि तदादौ अर्चायाः पूजायाः उपकरणेऽर्चनसाहित्ये विशेषं विशिष्टं सुमम् पुष्पम् "कुसुमं—सुममित्यमरः" । अत्र रूपकालंकारः, चिन्वन् चिन्वानः सन् न उपगतम् न प्राप्तम् सेवायै पूजायै उचितं योग्यं सुमं पुष्पम् येन स अयमर्चकः खिन्नः खेदं प्राप्तः दुःखितः इत्यर्थः । पुष्पालाभादिति-भावः । स्वीयं स्वकीयं हृदयं चेतश्च तत् कुसुमञ्च चार्प्य अर्पयित्वा मुदितः प्रसन्नः सन् त्वां प्रपन्नः शरणं गतः । ततः गताः विगताः सकलाः वाञ्छा इच्छा यस्य स विगतसकलेच्छ इत्यर्थः । विगता निवृत्ता भीर्भयं यस्य स निर्भयो जात इत्यर्थः ।

हिन्दी टीका—हे भगवन् कोई भक्त आपके लिये पर्वत वाटिका आदिकों में पूजा की सामग्री में विशिष्ट पुष्प ढूँढ़ता हुआ जब सेवा के योग्य श्रेष्ठ पुष्प न प्राप्त हुआ तब दुःखित होकर स्वकीय हृदय रूपी पुष्प को अर्पण कर आपके शरण आया। उससे उसकी सम्पूर्ण इच्छाएँ निवृत्त हो गईं और वह निर्भय हो गया। भगवत् शरणागति से मनुष्य की वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं और भगवत् पद प्राप्ति से भय रहित हो जाता है।

"विष्णोः पदं निर्भयम्" इत्यादि प्रमाणों से ॥ ५ ॥

वसन्ततिलका।

अन्वेषयन् कुसुममर्चनहेतवे ते
सेवोचितानुपमपुष्पमनाप्नुवंश्च ।
स्वं यो हृदार्पयदनर्घ्यसुमं प्रपन्नः
श्रीमंस्त्वदीयजनभावमवाप सोऽरम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हे श्रीमन् ते अर्चनहेतवे कुसुममन्वेषयन् सेवोचितानुपमपुष्पमनाप्नुवानः सन् यः स्वं हृद अनर्घ्यं सुममार्पयत् त्वां प्रपन्नश्च सः अरम्, त्वदीयजनभावमवाप।

सं० टीका:—हे लक्ष्मीवन् ते तव अर्चनहेतवे समर्चनाय कुसुमं पुष्पम् अन्वेषयन् गवेषयन् सेवायाम् उचितं योग्यं अनुपमम् पुष्पम्। अनाप्नुवानः अलभमानः यः स्वं स्वकीयं हृद् हृदयरूपम् अनर्घ्यकुसुमम् अमूल्यपुष्पम् न विद्यते अर्घ्यं मूल्यं यस्य तत्। अनर्घ्यञ्च तत् कुसुमञ्च। आर्पयत् समर्पितवान्। ततः त्वां प्रपन्नः शरणं गतः स अरम् शीघ्रम्। "लघु क्षिप्रमरं द्रुतं इत्यमरः" तवायं त्वदीयः स चासौ जनश्च तस्य भावं अवाप प्रापेत्यर्थः। त्वदीयजनत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थः संजात इति भावः।

हिन्दी टीका—हे भगवन् आपके सेवार्थ पुष्प को ढूँढ़ता हुआ सेवा योग्य अत्युत्तम पुष्प न प्राप्त कर जिसने स्वकीय हृदयरूपी अमूल्य

पुष्प अर्पण कर और आपके शरण प्राप्त हुआ वह शीघ्र आपका जन होकर कृतार्थ हुआ ॥ ६ ॥

शिखरिणीः—

> गुणानान्ते पारं परमपरमेशो न गदितु-
> मनन्तत्वात् कोऽपि प्रभवति गुणज्ञो गुणनिधिः ।
> परैः किं पार्यन्ते जितसुरसपत्नामितबल ,
> गुणाः सर्वैश्वर्यागुण च तत्र साधारण जनैः ॥ ७ ॥

अन्वयः—हे परम ते गुणानां पारं गुणज्ञः गुणनिधिः परमेशः कोऽपि गदितुं अनन्तत्वात् न प्रभवति । तर्हि हे अगुण ! हे जितसुर सपत्न ! हे अमित-बल ! हे सर्वैश्वर्य ! तत्र गुणाः परैः साधारण जनैः किं पार्यन्ते ।

सं० टीकाः—परा उत्कृष्टा मा लक्ष्मीर्यस्य स तत् संबुद्धौ हे परम उत्कृष्ट लक्ष्मीवन् । ते तव गुणानां महिम्नां पारं अन्तिमावधिं गदितुं वक्तुं गुणान् जानाति इति गुणज्ञो गुणवित् गुणानां निधिर्गुणाकरः । परा उत्कृष्टा मा लक्ष्मीर्येषां ते परमालोकेशास्तेषाम् ईशः को ब्रह्माऽपि हि निश्चयेनानन्तत्वात् न प्रभवति । तर्हि हे अगुण न विद्यन्ते गुणा यस्मिन् तत् संबुद्धौ हे अगुण ! जिताः पराजिताः सुराणां देवानां सपत्नाः शत्रवो येन स तत् संबुद्धौ हे जितसुरसपत्न अमितं प्रमाणरहितं बलं यस्य स तत् संबुद्धौ । सर्वाणि ऐश्वर्याणि यस्य तत् संबुद्धौ । तव गुणाः महिमानः साधारणजनैः प्राकृतपुरुषैः किं पार्यन्ते पारयितुं शक्यन्ते । गदितुं शक्यन्त इत्यर्थः । अर्थान्न गदितुं शक्यन्ते ।

हिन्दी टीका—हे उत्कृष्ट लक्ष्मीवन् ! आपके गुणों के अन्त को गुणज्ञ गुणनिधि लोकेशपति ब्रह्मा भी अनन्त होने से कहने के लिए समर्थ नहीं होता । तब हे निर्गुण देवताओं के शत्रुओं को जीतने वाले अनन्त शक्तिधारी सर्वैश्वर्य संपन्न आपके गुणों को साधारण मनुष्य कैसे पार पा सकते हैं ॥ ७ ॥

पञ्चचामरः—

अभूतपूर्वहृत्सुखप्रसूतिरच्युतार्चनात्,
भवेन्नरस्य मानसे हृदा क्रियेत चेत्तदा ।
विसृष्टसर्ववासनो निविष्टकृष्णमानसः,
परं पदं लभेत सोऽचिराद् भवाब्धिमुत्तरन् ॥ ८ ॥

अन्वय :—अच्युतार्चनात् नरस्य मानसे अभूतपूर्वहृत्सुखप्रसूतिर्भवेत् यदा हृदा क्रियेत् चेत्तदा विसृष्टसर्ववासनः निविष्टकृष्णमानसः स भवाब्धिमुत्तरन् अचिरात् परं पदं लभेत ।

सं० टीका:—अच्युतस्य भगवतोऽर्चनात् पूजनात् नरस्य जनस्य मानसे चित्ते अभूतपूर्वाजातपूर्वा हृत्सुखस्य हृदयानन्दस्य प्रसूतिरुत्पत्तिर्भवेत् । यदा चेत् हृदा मनसा क्रियेत् विधीयेत् चेत् तदा विसृष्टा निवृत्ता सकला सर्वा वासना वाञ्छा यस्य एवं भूतः सन् निविष्टं कृष्णे मानसं यस्य स भवाब्धिं संसारसमुद्रं उत्तरन् पारं गच्छन् अचिरात् शीघ्रं परं पदं भगवन्तं लभेत प्राप्नुयात् ।

हिन्दी टीका—भगवान् के पूजन से मनुष्य के हृदय में अभूतपूर्व हृदयानन्द की उत्पत्ति होती है। भक्ति एकाग्र चित्त से करें तब फिर सम्पूर्ण वासना निवृत्त होकर कृष्ण में चित्त संलग्न होता है और वह शीघ्र संसार समुद्र को पार कर परमपद को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

इन्द्रवज्राः—

धाता यथा लोकपमंडलस्थो, जिष्णुर्यथाऽमर्त्यसमूहसुस्थः ।
सम्राड्यथा भूपतिमण्डलस्थः, कृष्णोऽपि रेजे व्रजबालकस्थः ॥९॥

अन्वयः—लोकपमंडलस्थः धाता यथा 'राजते अमर्त्यसमूहस्थः जिष्णुर्यथा, भूपति मण्डलस्थः सम्राड्यथा तथा व्रजबालकस्थः कृष्णोऽपि रेजे ।

सं० टीका:—लोकान् भुवनानि पान्तीति लोकपा लोकेशास्तेषां मण्डले समूहे तिष्ठतीति तथोक्तः धाता ब्रह्मा यथा राजते प्रकाशते। अमर्त्या देवास्तेषां समूहे वृन्दे तिष्ठतीति तथोक्तः जिष्णुरिन्द्रः यथा राजते मण्डले स्वराज्ये ये भूपाः तेषां मध्ये तिष्ठतीति तथोक्तः सम्राट् चक्रवर्त्ती यथा राजते तथा व्रजस्य बालकेषु डिम्भेषु तिष्ठतीति तथोक्तः कृष्णोऽपि रेजे शुशुभे।

हिन्दी टीका—जैसे लोकपालों में स्थित ब्रह्मा सुशोभित होता है, जैसे देव समूह में स्थित इन्द्र शोभा को प्राप्त होता है, जैसे माण्डलिक राजाओं में सम्राट् चक्रवर्ती देदीप्यमान होता है वैसे ही व्रज बालकों में स्थित कृष्ण भी सुशोभित हुए ॥ ९॥

बसन्ततिलकाः—

त्रैलोक्यवैभवकृतेऽपिच योऽच्युतस्य,
पादाम्बुजान्न विमुखः सुरवृन्दमृग्यात्।
ध्यायं लवार्धनिमिषार्धमपि प्रबुद्धै,
रुक्तो महात्मभिरनुत्तमवैष्णवाग्र्यः ॥१०॥

अन्वयः—यः ध्यायं त्रैलोक्यवैभवकृतेऽपिच अच्युतस्य सुरवृन्दमृग्यात् पादाम्बुजात् लवार्धनिमिषार्धमपि न विमुखः भवतीति शेषः। स प्रबुद्धैः महात्मभिः अनुत्तमः वैष्णवाग्र्यः उक्तः।

सं० टीका:—यो भक्तः त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकं त्रिलोकमेव त्रैलोक्यं त्रिभुवनम्। तस्य विभव ऐश्वर्यं तस्य कृते तदर्थमपि भगवन्तं ध्यायन् अच्युतस्य भगवतः सुराणां देवानां वृन्दं समूहः तस्मात् तेन वा मृग्यात् अन्वेषणीयात् पादाम्बुजात् चरणकमलात् लवार्धनिमिषार्धमपि न विमुखो न वियुक्तो भवति। स प्रबुद्धैर्ज्ञानिभिः महात्मभिः न विद्यन्ते उत्तमायेभ्यस्ते अनुत्तमाः ये वैष्णवास्तेषु अग्रेभवः तथोक्तः कथितः उक्तः।

हिन्दी टीका—जो भक्त भगवान् का ध्यान करता हुआ तीनों लोक के ऐश्वर्य के लिए भी देवसमूह से ढूँढ़ने के योग्य भगवत् चरणारविन्द

से विमुख लवमात्र (निमेष मात्र) भी काल के लिए नहीं होता; वह श्रेष्ठ भक्त महात्माओं से सर्वोत्तम वैष्णवाग्रय कहा गया है ॥१०॥

शार्दूलविक्रीडितम् :—

ध्येयं ध्यानपथेन शुद्धमनसा पादारविन्दं हरेः,
नेयं चित्तमनन्तभक्तजनतासंगे सदानन्ददे।
देयं वित्तमशक्तनिर्धनकृते कृष्णाप्तये सात्विकं,
पेयं कर्णपुटैरनन्तचरितं पीयूषतोऽप्युत्तमम् ॥११॥

अन्वयः—हरेः पादारविन्दम् शुद्धमनसा ध्यानपथेन ध्यानमार्गेण ध्येयम् सदानन्ददे, अनन्तभक्तजनता संगे चित्तं नेयम्। कृष्णाप्तये अशक्त निर्धनकृते सात्विकं वित्तं देयं। पीयूषतोऽपि उत्तमम् अनन्तचरितं कर्णपुटैः पेयम्।

सं० टीका—हरेः कृष्णस्य पादारविन्दम् चरण कमलं शुद्ध मनसा एकाग्र-चित्तेन ध्यानपथेन ध्यानमार्गेण ध्येयं ध्यातव्यम्। ध्यानस्य पन्थाः तेन ध्यान-पथेन। शुद्धं मनो यस्य स तेन निर्मलचेतसा। सदा सर्वदा आनन्ददे सुखदे अनन्तस्य भगवतः ये जनास्तेषां समूहः भक्त सत्संगे संगतौ चित्तं मनो नेयम् प्रापणीयम्। कृष्णप्राप्त्यै। अशक्तनिर्धनः अतिदीनः तस्य कृते तदर्थं सात्विकं सत्कर्मणोपार्जितं द्रव्यं देयम्। वितरणीयम् पीयूषतोऽमृततोऽपि उत्तमं श्रेष्ठं अनन्तस्य कृष्णस्य चरितं कर्णपुटैः श्रवणैः पेयम् श्रोतव्यम्।

हिन्दी टीका—एकाग्रचित्त युक्त ध्यान मार्ग से भगवान् के चरणार-विन्द का ध्यान करना चाहिए। और सदा आनन्द देने वाले भक्त जनों के सत्संग में चित्त लगाना चाहिए अत्यन्त निर्धन के लिए भगवत् प्राप्ति के वास्ते सात्विक द्रव्य देना चाहिए। अमृत से भी अधिक मधुर भगवान् का चरित्र कानों से सुनना चाहिए ॥ ११ ॥

आर्याः—

गुणलिंगेन्द्रियपानां सततं या स्यान्निसर्गजा वृत्तिः ।
सत्त्वात्मनि गोविन्देऽहैतुक्यप्रतिहता भक्तिः ॥ १२ ॥

अन्वयः--गुणलिंगेन्द्रियपानां या निसर्गजा सततं अहैतुकी अप्रतिहता सत्वात्मनि गोविन्दे वृत्तिः स्यात् सा भक्तिः ।

सं० टीका—गुणाः विषयाः लिङ्ग्यन्ते ज्ञायन्ते इति गुणलिंगा विषयज्ञापकाः इन्द्रियाणि पान्तीति इन्द्रियपा गुणलिंगाश्चते इन्द्रियपास्तेषां गुणलिंगेन्द्रिय पानाम्। विषयज्ञापकेन्द्रियाधिष्ठातृदेवतास्तेषां सततं निरन्तरं सत्वात्मनि सत्वमूर्तौ गोविन्दे या निसर्गजा स्वाभाविकी अहैतुकी निष्कारणा अप्रतिहता अविच्छिन्ना या वृत्तिः स्यात् सा भक्तिः ।

हिन्दी टीका—विषय प्रकाशक इन्द्रियाधिष्ठातृ देवताओं की सत्व-मूर्ति भगवान् में जो निरन्तर स्वाभाविकी और निष्कारण अविच्छिन्न वृत्ति को भक्ति कहते हैं ॥१२॥

शिखरिणीः—

महित्वं यो जानन् सुदृढरतिभावं प्रकुरुतेऽ,
धिकंदारादिभ्यः सकलविषयेभ्यो भगवति ।
स भक्त्या नन्दाढ्यो द्रवितहृदयोनेत्र जलयुङ्
नरः शीघ्रं श्रीशं परमपुरुषं तर्पयति च ॥१३॥

अन्वयः—यः महित्वं जानन् दारादिभ्यः सकलविषयेभ्यो अधिकं सुदृढ-रतिभावं भगवति प्रकुरुते । स भक्त्या नन्दाढ्यो द्रवित हृदयः नेत्रजलयुङ्-नरः परं पुरुषं श्रीशं शीघ्रं तर्पयति ॥

सं० टीका—यः भक्तः महित्वं महात्म्यं जानन् विदन् दारादिभ्यः स्त्रीपुत्र-प्रभृतिभ्यः समस्तविषयेभ्यः अधिकं विशेषं सुदृढरतिभावं अत्यन्तप्रेमभावं भगवति परमात्मनि प्रकुरुते करोति स भक्त्या नन्दाढ्यः द्रवितं हृदयं यस्य स

तथोक्तः भक्त्यार्द्रचित्तः नेत्रयोर्जलं तेन युक्तः। स नरः परम् पुरुषं पुरुषोत्तमं श्रीशं लक्ष्मीपतिं शीघ्रं तर्पयति प्रीणयति। एतत् भक्तिलक्षणम् तदुक्तम् वल्लभाचार्य-निबन्धे।

"माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः। स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा"।

भगवत् शब्दार्थः भगो विद्यते यस्यासौ भगवान् भग शब्दार्थः उक्तः। "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चापि षण्णाम् भग इतीरणा।"

भगवत्-शब्दार्थं उच्यते—

संपत्तिं च विपत्तिं च भूतानामागतिं गतिं।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥ १३ ॥

हिन्दी टीका—जो भक्त भगवान् के माहात्म्य को जानकर स्त्री-पुत्रादि सबसे अधिक भगवान् में अत्यन्त प्रेम करता है। वह भक्तियुक्त होकर जिसका चित्त भक्ति से द्रवित हो रहा है और प्रेमाश्रु नेत्रों मे से निकल रहे हैं। वह शीघ्र ही परमेश्वर को प्रसन्न करता है ॥ १३ ॥

उपजातिः—

सर्वेन्द्रियाणां भगवत्यनन्ते,
नैसर्गिकी या रतिरस्ति भक्तिः।
अकारणा चास्थगितानिशं या,
मुक्तेर्गरीयस्यऽपि सा बुधोक्ता ॥ १४ ॥

अन्वयः—सर्वेन्द्रियाणां अनन्ते भगवति नैसर्गिकी अकारणा अस्थगिता च या अनिशं रतिः सा भक्तिः अस्ति। बुधोक्ता सा मुक्तेरपि गरीयसी मता ॥१४॥

सं० टीका—सर्वेन्द्रियाणां सकलकरणानां अनन्ते भगवति वासुदेवे

नैसर्गिकी स्वाभाविकी अकारणा निष्कामा अस्थगिता अविच्छिन्न-धारा या अनिशं सततं रतिः प्रीतिः सा भक्तिः कथिता। मुक्तेरपि गरीयसी श्रेष्ठा हे बुध ! उक्ता।

हिन्दी टीका—सरलसारभक्तिलक्षण—सम्पूर्ण इन्द्रियों की भगवान् वासुदेव में स्वाभाविकी और निरन्तर अविच्छिन्न प्रीति भक्ति कही जाती है। वह मुक्ति से श्रेष्ठ कही गई है॥ १४॥

उपजातिः—

सकामनिष्कामभिदा द्विधार्चा,
तत्रापि सोक्ता तनुजार्थजा च।
सकामभक्तिर्विषयैषणादा,
मोक्षप्रदा या कथिता ह्यकामा॥ १५॥

अन्वयः—अर्चा सकामनिष्कामभिदा द्विधा तत्रापि सा तनुजा अर्थजा च, सकामभक्तिः विषयैषणादा या अकामा कथिता सा हि मोक्षप्रदा॥१५॥

सं० टीका—अर्चा पूजा सकामश्च निष्कामश्च तौ तयोर्भिदा भेदेन द्विधा द्विप्रकारा। तत्रापि द्विविधभक्त्योः प्रत्येकं तनुजा शरीरजा अर्थजा वित्तजा च इति भेदेन द्विप्रकारा या सकामा भक्तिः सा विषयस्य भोगस्य एषणां इच्छां ददातीति। तथोक्ता। भोगेच्छाप्रदा इत्यर्थः। या अकामा निष्कामा भक्तिः कथिता सा मोक्षप्रदा।

"नवविधभक्तेर्भेदा नरसिंहावितभक्तवरप्रोक्ताः,
अवयन्त्यसंख्यभेदांस्तत्वज्ञा भक्ति-मार्गस्य॥

हिन्दी टीकाः—सकाम निष्काम भेद से पूजा दो प्रकार की होती है। उसमें भी शरीर और द्रव्य से प्रत्येक के दो भेद हैं। सकाम भक्ति विषयों को देने वाली है और निष्काम भक्ति मोक्ष देती है॥ १५॥

पञ्चचामरः—

शरीरजार्थजोभयोक्तभक्तिभेदयोः पुरा,
प्रकीर्तिता शुभा स्मृता परोदिता तु मध्यमा ।
यतोन्यमानसेन मानवेन यार्थलालसा,
वशाद् भवार्थसन्निविष्टचेतसा वरामता ॥ १६ ॥

अन्वया—शरीरजा अर्थजा इति उभयोः उक्तभक्तिभेदयोः या पुरा प्रकीर्तिता सा शुभास्मृता या परा उदिता सा तु मध्यमा यतः अन्यमानसेन अर्थसन्निविष्टचेतसा मानवेन अर्थलालसावशात् भवा सा अवरामता ॥१६॥

सं० टीका—शरीरजा तनुजा अर्थजा वित्तजा इति द्विविधा द्विप्रकारेण उक्तयोः कथितयोर्भक्तेर्भेदयोः पुरा पूर्वम् प्रकीर्तिता कथिता शुभा श्रेष्ठा मता । परा द्वितीया मध्यमा कथिता यतः यस्मात्कारणात् अन्यत् मानसं यस्य स तेन अर्थे द्रव्ये सन्निविष्टं लग्नं चेतश्चित्तं यस्य स तेन मानवेन नरेण अर्थस्य लालसावशात् आकांक्षाधीनतया भवा उत्पन्ना सा अवरा अशोभना मध्यमा इत्यर्थः ॥ १६ ॥

हिन्दी टीका—शरीर से होनेवाली, धन से होने वाली दो प्रकार की भक्ति कही गई। उसमें पहली शरीर से होने वाली श्रेष्ठ मानी गई है। और दूसरी धन से होने वाली मध्यमा कही गई है। क्योंकि दूसरे के मन से जिसका चित धन में लगा हुआ है ऐसे पुरुष से द्रव्य की आकांक्षा के वश से होने वाली भक्ति श्रेष्ठ कैसे हो सकती है। अतः मध्यमा मानी गई है ॥ १६ ॥

शालिनीः—

ईदृग्भक्त्या येऽर्चयन्ति प्रभुन्ते,
नेप्सन्त्यार्या दीयमानां च मुक्तिम् ।
भक्त्यानन्दाम्भोधिमग्नात्मचित्ता,
नित्यं सेवाधर्मवित्तास्तु धन्याः ॥ १७ ॥

अन्वयः—ये ईदृग्भक्त्या प्रभुम् अर्चयन्ति ते आर्या दीयमानां मुक्तिं च न ईप्सन्ति। भक्त्यानन्दाम्भोधिमग्नात्मचित्ताः सेवाधर्मवित्तास्ते धन्याः ॥१७॥

सं० टीका—ये भक्ताः ईदृग् भक्त्या एवं भूतया सेवया प्रभुं भगवन्तं अर्चयन्ति पूजयन्ति ते स्वयं दीयमानां मुक्तिमपि नेप्सन्ति न वाञ्छन्ति। भक्तिरेव आनन्दाम्भोधि आनन्दजलनिधिः तस्मिन् मग्ने आत्मा च चित्तं च इति आत्मचित्ते मग्ने आत्मचित्ते येषां ते निमग्नात्मचित्ताः। भक्त्यानन्दसमुद्रमग्नात्म-हृदयाः सेवाधर्म एव वित्तं येषां ते तथोक्ताः भक्ता धन्याः धन्यवादार्हाः ॥१७॥

हिन्दी टीका—जो भक्त पूर्वोक्त भक्ति के अनुसार भगवान् की सेवा करते हैं वे भगवान् से दी हुई मुक्ति को भी नहीं चाहते हैं। क्योंकि भक्ति रूप आनन्द समुद्र में आत्मा और चित्त के मग्न हो जाने से सेवा धर्म को ही वित्त मानने वाले वे भक्त धन्यवाद के पात्र हैं॥ १७॥

गोपीगीतवत्—

जपत मानवा नाममंत्रकं
दुरितनाशनं ज्ञानकाशनम्।
हृदयशोधकं स्वान्तमोदकं
विमलभक्तिदं भुक्तिमुक्तिदम्॥ १८॥

अन्वयः—हे मानवाः! दुरितनाशनं ज्ञानकाशनं हृदयशोधकं स्वान्तमोदकं विमलभक्तिदं मुक्तिदं नाममंत्रकं जपत ॥ १८ ॥

सं० टीका—मनोरपत्यानि मानवाः दुरितस्य पापस्य नाशनं नाशकरं ज्ञानस्य काशनं प्रकाशकं हृदयस्य मनसः शोधकं निर्मलकरं स्वान्तस्य चित्तस्यानन्द दं निर्मलभक्तिप्रदं भोगं निर्वाणप्रदं च नाममंत्रकं नामैव मंत्रकं नाममंत्रकं जपत पठत। पुनः पुनः प्रावर्तयत इत्यर्थः।

हिन्दी टीका—पापों के नाश करने वाले ज्ञान को प्रकाशित करने वाले, हृदय को शुद्ध करने वाले, चित्त को आनन्द देने वाले

और निर्मल भक्ति देने वाले, भोग और मोक्ष को देने वाले भगवन्नामन्त्र का हे मनुष्यों जप करो ॥ १८ ॥

रथोद्धताः—

रामनामरसनारसं त्यजन्,
सर्वदामृतसुखाप्तये मुदा ।
कामलोभकलुषात्मशोधनम्,
जन्ममृत्युभवबन्धमोचनम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—हे नः ! रसंत्यजन् सर्वदा अमृतसुखाप्तये मुदा कामलोभकलुषात्मशोधनम् जन्ममृत्युभवबंधमोचनम् रामनाम रस ।

सं० टीकाः—हे नः हे मनुष्यः रसं षड्रसं त्यजन् मुञ्चन् सर्वदा अमृतस्य मोक्षस्य यत् सुखं तत्प्राप्तये, मुदा हर्षेण कामश्च लोभश्च ताभ्यां कलुषस्य—कलुषितस्य आत्मनः शोधनं शुद्धिकरं जन्म च मृत्युश्च भवश्च जन्ममृत्युभवाः त एव बन्धनानि तेषां मोचनम्, रामनाम रस आस्वादय ।

हिन्दी टीकाः—हे मनुष्य । जिह्वा के रस को त्यागकर सर्वदा मोक्ष सुख की प्राप्ति के लिए काम और लोभ से कलुषित आत्मा को पवित्र करने वाला जन्म मृत्यु और संसार रूपी वंधन को छुड़ाने वाला रामनाम रूपी रस का आस्वादन कर ॥ १९ ॥

मालिनीः—

कपटकुटिलवृत्ते वासनामद्यमत्ते,
विरहितशुभवित्ते कामविच्छिन्नचित्ते ।
सकलगुणविहीनेदुर्भवोत्पत्तिदीने,
मयि सुभग दयस्वानन्त हे दीनबन्धो ॥ २० ॥

अन्वयः—हे दीनबन्धो ! हे सुभग परमेश्वर ! हे अनन्त ! कपटकुटिलवृत्ते, वासनामद्यमत्ते विरहितशुभवित्ते कामविच्छिन्नचित्ते सकलगुणविहीने दुर्भवोत्पत्तिदीने, मयि दयस्व ॥ २० ॥

सं० टीका—कपटेन मायया कुटिलं वक्रं दुष्टमित्यर्थः वृत्तं शीलं यस्य तस्मिन् वासना एव मद्यं तेन मत्ते। विरहितं रहितं शुभं पुण्यरूपं वित्तं यस्य तस्मिन् कामेन विच्छिन्नं चित्तं यस्य तस्मिन् सकलगुणविहीने सर्वगुणरहिते दुष्टे भवे संसारे या उत्पत्तिस्तया दीने मयि हे सुभग। दयस्व।

हिन्दी टीका—हे सुन्दर ऐश्वर्यवाले दीनबन्धो अनन्त भगवन्! कपट से कुटिल शील आचरणवाले कामादि वासना रूपी मद्य से मदोन्मत दुष्टचित्तवाले पुण्यरूप धन से रहित कामदेव से दूषित चित्तवाले सर्व गुणरहित दुष्ट संसार में उत्पत्ति से दीन मुझ पर दया करें ॥२०॥

शिखरिणीः—

सुखाभोगाकृष्टप्रबलमदमत्तेभहृदये,
सुदीनानाथेऽस्मिन्नबुधपृथुकेऽनन्यशरणे।
दयापारावारातुलितनिजभक्तार्पितदय,
मदीयोऽयं बालो मयि भवतु भावस्तव विभो ॥२१॥

अन्वयः—हे विभो! हे दयापारावार! हे अतुलित निजभक्तार्पित-दय! सुखाभोगाकृष्टप्रबलमदमत्तेभहृदये सुदीनानाथे, अबुधपृथुके अनन्यशरणे अस्मिन् मयि मदीयोऽयं बालः इति भावः भवतु।

सं० टीका—हे व्यापक! हे दयासिन्धो अतुलिता अपरिमिता निजभक्तेषु अर्पिता दत्ता दया येन सुखानां विषयाणां आसमन्तात् भोगेनानुभवेन आकृष्ट प्रबलो बलवान् यो मदमत्तः इभः तद्वद् हृदयं यस्य तस्मिन्, सुदीनश्चासौ अनाथश्च तस्मिन् अबुधश्चासौ पृथुकश्च अबुधपृथुके अनभिज्ञबालकेअनन्य शरणे नास्ति अन्यत् शरणं रक्षको यस्य तस्मिन्। अस्मिन् मयि। अयम् मदीयः बालः इति तव भावः भवतु।

हिन्दी टीका—हे दया के सागर निज भक्तों पर अत्यन्त दया करनेवाले विभो! सुखों के भोग से आकर्षित बलवान मदमत्त हस्ती

के तरह हृदयवाले अत्यन्त दीन और अनाथ, अनजान अनन्य शरण मुझ बालक पर दया करें ॥ २१ ॥

पुष्पिताग्रा वृत्तं:—

अभयदहरिपादपद्मसेवाश्रयमभि-
लिप्स्वितराश्रयाप्तिहीनः।
अशरणशरणं शरण्यमीशं, गिरिधरणं,
शरणं गतोऽस्मि नित्यम् ॥२२॥

अन्वयः—अभयदहरिपादपद्मसेवा श्रयं अभिलिप्स्वितराश्रयाप्तिहीनः अहम् अशरणशरणं शरण्यमीशम् गिरिधरणम् ईशम् नित्यं शरणं गतोऽस्मि ॥

सं० टीका—इतराश्रयस्य आप्तिः तया हीनः रहितः हरेः कृष्णस्य पादपद्मस्य चरणकमलस्य सेवार्चनम् एव आश्रयं अभिलब्धुम् इच्छुः अभिलिप्सु स चासौ इतराश्रयाप्तिहीनश्च तथोक्तः। अशरणशरणं अरक्षकरक्षकं शरणे साधुः शरण्यस्तं शरणागतरक्षकम् गिरिधरणं गोवर्धनधरं ईशं कृष्णं नित्यं शरणं गतोऽस्मि ॥

हिन्दी टीका—अन्य आश्रय से रहित भगवद् चरणारविन्द सेवा-रूप आश्रय चाहता हुआ अरक्षक के रक्षक शरणागतपालक गोवर्धन-धारी के मैं नित्य ही शरण प्राप्त हूँ ॥ २२ ॥

रथोद्धता :—

प्रार्थनामयि सरोजलोचना,
कर्णयाशु मम गोपनन्दन।
मानसं तव पदाब्ज इन्दिरा,
ह्यन्निभन्तु मम षट्पदायताम् ॥२३॥

अन्वयः—हे सरोज लोचन ! हे गोप नन्दन ! मम प्रार्थनाम् आशु आकर्णय मम मानसं तव पदाब्जे इन्दिरा ह्यन्निभन्तु षट्पदायताम् ॥ २३ ॥

सं० टीका :—हे कमल नयन ! हे नन्द नन्दन ! मम दीनस्य प्रार्थनाम् प्रार्थनीयम् आशु शीघ्रम् आकर्णय शृणु। मम मानसं चित्तं तव पदाब्जे तव पादपद्मे इन्दिराहृन्निभं लक्ष्मी हृदयतुल्यं नु इति वितर्के षट्पदायताम् षट्पद इवाचरति इति षट्पदायते। तत्र लोटि। षट्पद इव आचर्यताम् ॥

हिन्दी टीका—हे कमलनयन ! हे नन्दनन्दन ! मेरी इस प्रार्थना को शीघ्र श्रवण करें। मेरा चित्त, लक्ष्मी जिस प्रकार आपके चरणारविन्द की सेवा में नित्य लगी रहती है, तद्वत् भ्रमर के तुल्य लगा रहे ॥ २३ ॥

उपजाति :—

याऽहर्निशं गायति माधवस्य,
नामानि पापौघविनाशनानि।
जिह्वा हि सा दार्दुरिकोपमान्या,
प्रलापकर्त्री भवदुःखदात्री ॥ २४ ॥

अन्वयः—या जिह्वा पापौघविनाशनानि माधवस्य नामानि अहर्निशं गायति सा जिह्वा अन्या प्रलापकर्त्री भव दुःखदात्री दार्दुरिकोपमा ॥

सं० टीका—या जिह्वा रसना पापानां समूहस्य नाशनानि माधवस्य कृष्णस्य नामानि अहर्निशं गायति ब्रवीति सा एव जिह्वा या च न गायति वृथैवानर्थकवचनानि प्रलापान् करोति सा संसारदुःखदात्री दार्दुरिकोपमा मण्डूकजिह्वेव ॥

हिन्दी टीका—जो रसना रात-दिन पापों के नाश करने वाले भगवान् के नामों को लेती है वही जिह्वा है। जो व्यर्थ बकती है वह संसार रूपी दुःख को देने वाली मेंढक की जीभ के समान है ॥ २४ ॥

उपजातिः—

धर्मार्थकामत्रयसौख्यधात्री,
सद्ज्ञानवैराग्यकयोः सवित्री।

असारसंसारविरक्तिकर्त्री,
भक्तिर्हि निर्वाणपदस्य दात्री ॥ २५ ॥

अन्वयः—धर्मार्थकामत्रयसौख्यधात्री सद्ज्ञानवैराग्यकयोः सवित्री असार-संसारविरक्तिकर्त्री निर्वाणपदस्य दात्री भक्तिर्हि ॥

सं० टीका—धर्मश्च अर्थश्च कामश्च धर्मार्थकामास्तेषां त्रयस्य सौख्यं ददातीति तथोक्तः ज्ञानवैराग्यकयोः सवित्री उत्पादयित्री, असारे संसारे विरक्तिकर्त्री विरागकारिणी निर्वाणपदस्य मोक्षस्य दात्री भक्तिरस्ति ।

हिन्दी टीका—धर्मार्थ काम तीनों के सुख को देनेवाली ज्ञान वैराग्य की माता असार संसार से विरक्त करनेवाली, मोक्ष को देनेवाली भक्ति है ॥ २५ ॥

उपजातिः—

यस्यास्ति यस्मिन् वितता हि भक्ति-
र्देवेविधेयाभ्यधिका प्रसक्तिः-
तथा भवेत् संसृतितो विरक्ति,
र्मोक्षं लभेताशु शुभप्रवृत्तिः ॥ २६ ॥

अन्वयः—यस्य यस्मिन् देवे वितता भक्तिरस्ति तस्मिन् अधिका प्रसक्तिर्विधेया तथा संसृतितो विरक्तिर्भवेत् शुभप्रवृत्तिः स आशु मोक्षं लभेत ।

सं० टीका—यस्य पुरुषस्य यस्मिन् देवे वितता विस्तृता भक्तिः प्रीतिः अस्ति तस्मिन् देवे अधिका विशिष्टा प्रसक्तिः प्रवृत्तिर्विधेया कार्या तथा संसृतितः संसारतो विरक्तिर्भवेत् । ततश्च शुभा प्रवृत्तिर्यस्य स आशु शीघ्रं मोक्षं निर्वाणं लभेत प्राप्नुयात् ॥

हिन्दी टीका—जिस पुरुष की जिस देवता में अधिक भक्ति हो वह उसी देवता में अधिक प्रीति करे उससे वह संसार से विरक्त होकर शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

वंशस्थम्ः—

सुरूपविद्याचरणैर्न पौरुषै-
र्वयःसुजातिद्रविणैः प्रसीदति ।
गुणाः प्रियास्तस्य न सन्ति केवलम्,
हरिस्तु भक्त्यैव सदा प्रहृष्यति ॥ २७ ॥

अन्वयः—हरिः सुरूपविद्याचरणैः पौरुषैः वयःसुजातिद्रविणैः न प्रसीदति । तस्य केवलम् गुणाः प्रियाः न सन्ति स भक्त्या एव प्रहृष्यति ॥

सं० टीका—सुरूपंच विद्याच आचरणानिच तैः सौंदर्यविद्याचरणैः पौरुषैः पुरुषार्थैः वयश्च सुजातिश्च द्रविणञ्च वयःसुजातिद्रवणानि तैः न प्रसीदति न प्रसन्नो भवति । यस्य परमेश्वरस्य गुणाः प्रियाः न सन्ति स केवलम् भक्त्या एव प्रहृष्यति तुष्यति ॥

हिन्दी टीका—परमेश्वर आचार, विद्या, धन पुरुषार्थ और रूप इनसे प्रसन्न नहीं होता । उसको गुण प्यारे नहीं हैं । वह केवल भक्ति से ही प्रसन्न होता है ॥ २७ ॥

वंशस्थः—

न साधनैर्दानतपोजपाध्वरै-,
रं प्रभुस्तुष्यति कस्यचिद्धरिः ।
यथा प्रहृष्यत्यथ भक्तदैन्यतः,
प्रमाणमत्र व्रजगोपिका द्रुतम् ॥ २८ ॥

अन्वयः—प्रभुः हरिः दानतपोजपाध्वरैः अरम् कस्यचित् न तुष्यति यथा भक्त जनस्य दैन्यतः द्रुतम् प्रहृष्यति । अत्र व्रज गोपिकाः प्रमाणम् ।

सं० टीका—प्रभुः परमेश्वरः दानञ्च तपश्च जपश्च अध्वरश्चदानतपोजपाध्वरास्तैः साधनैः कारणैः अरम् शीघ्रम् कस्यचित् कस्यापि न तुष्यति प्रसीदति ।

यथा भक्तजनस्य दैन्यतः दीनतायाः द्रुतम् शीघ्रम् प्रहृष्यति तुष्यति । अत्र व्रजगोपिकाः प्रमाणम् । यदा भगवता मुरलीवादनेन आकर्षिता गोप्यो निशि कृष्णसमीपं ययुः पश्चात् तासां गर्वसंभवेतु प्रभुरन्तर्दधे । ततश्च भगवद्दर्शनार्थे गोपिकाभिः कृष्णलीलाऽनुकरणं कृतं स्तुतिश्च गोपीगीतेन कृता तथापि भगवान् दर्शनं न ददौ तदा कृष्णदर्शनलालसा यदा रुरुदुः तदा श्रीकृष्णः शीघ्रं प्रादुर्बभूव । अत्र वल्लभाचार्यनिबन्धे कथितम् ।

"नहिसाधनसम्पत्त्या हरिस्तुष्यति कस्यचित् ।
भक्तानां दैन्यमेवैकं हरितोषणसाधनम् ॥"

हिन्दी टीका—भगवान दान, जप, तप आदि साधनों से वैसे शीघ्र प्रसन्न नहीं होते हैं जैसे भक्तों की दीनता से शीघ्र प्रसन्न होते हैं। जैसे व्रजगोपिकाओं पर प्रसन्न हुए ॥ २८ ॥

वसन्ततिलका:—

आनन्दमात्रकरपादसरोरुहादि,
दिव्यं वपुर्भगवतोऽद्भुततैजसंहि ।
यत् कोट्यऽनंगसुविलज्जितरूपराशि,
मायागुणैररचितं सुमनोहरश्री ॥ २९ ॥

अन्वयः—आनन्दमात्र करपादसरोरुहादि अद्भुततैजसं सुमनोहरश्रि यत् कोट्यनंगसुविलज्जितरूपराशि मायागुणैररचितं भगवतः दिव्यं वपुः अस्ति इति शेषः ।

सं० टीका—आनन्द एवेति आनन्दमात्रं करपादसरोरुहादि कराश्च पादाश्च सरोरुहाणि इव तदादि यस्य तद् अद्भुततैजसं आश्चर्यजनकतेजःस्वरूपं । सुमनोहरश्री सुन्दरकान्ति । यत्कोट्यऽनंग कोटिसंख्याकमदनद्वेषितरूपसौन्दर्यम् । माया गुणैः प्रकृतिगुणैः सत्त्वादिभिर्नविरचितम् भगवतः परमेश्वरस्य दिव्यं अलौकिकं वपुः शरीरं अस्ति वर्तते ।

हिंन्दी टीका:—आनन्दमय हस्तपाद मुखादियुक्त आश्चर्यजनक तेजस्वरूप सुन्दर कान्तिवाला करोडो कामदेवों को लज्जित करने वाले सौन्दर्ययुक्त मायागुणों से न रचा हुआ भगवान् का दिव्य देह है॥ २९॥

द्रुतविलम्बितः—

सकलजीवमयेश्वरभावनां, निगमतत्त्वभवां रुचिरार्चनाम्।
विदधति त्वयि केशव ये जना, लघुतरन्ति मृतिं भवदुःखदाम्॥३०॥

अन्वयः—हे केशव! ये जनाः सकलजीवमयेश्वरभावनां निगमतत्त्व-भवां रुचिरार्चनाम् विदधति ते भवदुःखदां मृतिं लघुतरन्ति।

सं॰ टीका—कश्च ईशश्च केशौ ब्रह्मशिवौ तयोर्वं अमृतं यस्मात् स केशवः तत् संबुद्धो हे केशव, येजनाः त्वयि सकलजीवमयेश्वरभावनां सर्व-प्राणिषु ईश्वरभावनाम्। निगमतत्त्वभवां रुचिरार्चनां वेदसाररूपां सुन्दराम् अर्चनां कुर्वन्ति ते लघुशीघ्रं भवदुःखदां संसारदुःखप्रदां मृत्युं मृतिं तरन्ति। मोक्षं प्राप्नुवन्ति इत्यर्थः।

हिन्दी टीका—हे केशव! सम्पूर्ण प्राणियों को ईश्वर रूप देखना इस वेदों के सारमय पूजन को जो मनुष्य आपके विषय में करते हैं वे शीघ्र ही संसार समुद्र को पार कर लेते हैं॥३०॥

रथोद्धताः—

खाटपाटपदनीरजं बुधा, ध्यायतात्मपदलब्धयेऽनिशम्।
कामरार्चितमभीप्सितार्थदम्, रोमकोटिभुवनैःसुपूजितम्॥३१॥

अन्वयः—हे बुधाः! आत्मपदलब्धये कामरार्चितं अभीप्सितार्थदम्, रोमकोटिभुवनैःसुपूजितम्, खाटपाटपदनीरजं अनिशं ध्यायत।

सं॰ टीका—हे विद्वांसः! आत्मपदलब्धये आत्मनः परमेश्वरस्य पदं निर्वाणं तस्य लब्धये प्राप्तये कश्च अमराश्च कामराः ब्रह्मसुरास्तैरर्चितम्,

अभीप्सितं अर्थं ददातीत्यभीप्सितार्थदम्, रोमसु कोटिभुवनानि तैः सुपूजितम्, खे आकाशे अटन्तीति खाटाः तान् पाति रक्षतीति तत्पो गरुडः तेन अटतीति खाटपाटो विष्णुः, तस्य पदनीरजं पादपद्मं अनिशं सततं ध्यायत चिन्तयत ॥

हिन्दी टीका—हे विद्वानो! मोक्ष प्राप्ति के लिये ब्रह्मा और देवताओं से पूजित मनोवांछित फलदायक, रोमों में जो करोड़ों ब्रह्माण्ड, उनसे सुपूजित, पक्षियों के राजा गरुड़ जिनके वाहन हैं ऐसे विष्णु के चरण कमल को निरन्तर ध्यान करें॥ ३१॥

इन्द्रवज्राः—

नीरुग् शरीरं बलवच्च पुष्टम्, यावच्च, कार्यक्षमतेन्द्रियाणाम् ।
तावद् भवव्याधिविनाशनाय, सेवस्व सर्वेश्वरपादपद्मम् ॥३२॥

अन्वयः—यावत्, शरीरं नीरुग् वर्तते, यावच्च, इन्द्रियाणाम् कार्यक्षमता, तावत् भवव्याधिविनाशनाय, सर्वेश्वरपादपद्मम् सेवस्व ।

सं० टीका—यावत्कालपर्यन्तं शरीरं, नीरुग् निर्गता रुक् यस्मात् तत्। रोगरहितम् यावच्च इन्द्रियाणां कार्यक्षमता, कार्यकरणे सामर्थ्यम्। तावत् भवव्याधिविनाशनाय, भव एव व्याधिः संसाररोगः तस्य विनाशनाय, सर्वेश्वरस्य भगवतः पादपद्मम् चरण कमलम् पूजय ॥

हिन्दी टीका—जब तक शरीर नीरोग है और इन्द्रियों की कार्य करने में शक्ति है। तब तक संसार रूपी रोग को नष्ट करने के लिये भगवान् के चरणारविंद का सेवन करे॥ ३२॥

ज्ञान प्रकरणम्

शिखरिणी छन्दः—

परासिं चेद् वाञ्छस्यखिलजगदामानुषमिदम्,
स्मर ब्रह्मेति त्वं मनसि हरिरेवेदमिति च ।

बुधैः प्रोक्तः पन्था हरिजगदभेदः सुखकरो,
भवाब्ध्यन्तं यातुं त्वितरपथगः क्लेशगमनः ॥३३॥

अन्वयः—हे मित्र यदि परासिं वाञ्छसि तर्हि आमानुषंमिदं अखिल जगत् ब्रह्म इति त्वं मनसि स्मर। हरिरेव, इदम् जगत्, इति च स्मर। हरिजगदभेदः पन्था भवाब्ध्यंतं यातुं, बुधैः. सुखकरः प्रोक्तः। इतरपथगस्तु क्लेशगमनः।

सं० टीकाः—यदि परं परब्रह्म प्राप्तुं लब्धुं इच्छसि तर्हि आमानुषं, मनुष्यादारभ्य कीट-पतंगपर्यन्तं अखिलं जगत् सर्वं विश्वम् ब्रह्म वर्तत इति। मनसि त्वं स्मर। अथ च हरिरेव इदं जगदिति च स्मर। हरिश्च जगच्चहरिजगतौ तयोरभेदः हरिजगदभेदः ब्रह्म जगदभेदवान् पन्थाः मार्गः भवाब्ध्यंतं संसारसमुद्रस्य पारं गन्तुं प्राप्तुं बुधैः पण्डितैः सुखकरः सुखदः प्रोक्तः। इतर पथगः इतरेण पथा गच्छतीति इतरपथगः अन्य मार्गगामी, क्लेशगमनः क्लेशः गमने यस्य स। अतएव, उक्तम्:—'हरिरेव जगज्जगदेव हरिर्हरितो जगतो नहि भिन्न तनूः, इति यस्य मतिः परमार्थ गतिः स नरो भवसागर मुद्धरति।

हिन्दी टीकाः—हे मित्र! यदि परं ब्रह्म को प्राप्त करना चाहता है तो मनुष्य से लेकर कीट, पतंग पर्यन्त संपूर्ण जगत् को ब्रह्मरूप हृदय में समझो। और ब्रह्म ही सारा जगत् है यह भी समझो। जगत् और ब्रह्म में कोई भेद नहीं। यह मार्ग संसार समुद्र को पार करने के लिए पण्डितों ने श्रेष्ठ बतलाया है और इतर मार्ग दुःखदायक है॥ ३३॥

वंशस्थ:—

अनन्यबोध्यं तव निर्गुणं वपु,
रविक्रियं स्वानुभवं व्रजार्तिहन्।
पश्यन्ति तन्निर्मलचेतसो बुधाः
परं सुबुद्धे समदर्शना मुदा ॥३४॥

अन्वयः—हे व्रजार्तिहन् तव यत् अनन्यबोध्यम् अविक्रियं स्वानुभवं बुद्धेः परं निर्गुणं वपुः निर्मलचेतसः समदर्शना बुधाः मुदा तत् ध्यायन्ति ।

सं० टीका—व्रजस्य आर्तिं पीडां हन्तीति तत् संबुद्धौ तव यत् अनन्यबोध्यम् न अन्येन बोध्यम् बोद्धुं ज्ञातुं शक्यम् न विद्यते विक्रिया विकारो यस्य तत् स्वेनैव अनुभवो यस्य तत् न परानुभवमित्यर्थः। बुद्धेः मतेः परं निर्गुणं निर्गता गुणा यस्मात् तत्, वा निःशेषा गुणा यस्मिन तत्, वपुः शरीरं निर्मलं चेतो येषां ते निर्मलचेतसः शुद्धमनसा समदर्शना समदृष्ट्या बुधाः ज्ञानिनः मुदा हर्षेण, तत् वपुः पश्यन्ति ध्यायन्ति । अवलोकन्ते इत्यर्थः ।

हिन्दी टीका—हे दुःखहरः ! आपका जो अन्य किसी से भी नहीं जानने के योग्य विकार रहित स्वानुभव बुद्धि से परे समदर्शन वाला तुम्हारा निर्गुण रूप शुद्ध चित्त वाले ज्ञानी हर्ष से देखते हैं ।। ३४ ।।

गोपीगीतवत् :—

भगवदर्पितं कर्मबन्धनं क्षयति,
तत् क्षणात् पक्वशालिवत् ।
न पुनरुद्भवस्तस्य जायते,
भवति नो-जनिः संसृतौ, पुनः ।।३५।।

अन्वयः—भगवदर्पितं कर्मबन्धनम्, पक्वशालिवत्, तत् क्षणात् क्षयति तस्य, पुनः उद्भवः न जायते, पुनः संसृतौ, जनिः न भवति ।

सं० टीका—भगवतेऽर्पितं भगवदर्पितं भगवत्समर्पितम्, कर्मबंधनम् कर्मैवबन्धनम् पक्वशालिवत् भर्जितधानावत् तत्क्षणात् क्षयति क्षिणोति तस्य पुनः उद्भवः उत्पत्तिर्नो जायते । पुनः संसृतौ संसारे, जनिः जन्माऽपि नो भवति ।

हिन्दी टीकाः—भगवान् को अर्पण किया हुआ कर्म भुजे हुए धान के समान तत् क्षण नष्ट हो जाता है । फिर उसकी उत्पत्ति नहीं होती और उस पुरुष का फिर संसार में जन्म भी नहीं होता ।।३५।।

द्रुतविलम्बितः—

पुनरतीव विशेषसुखप्रदं,
मिलति विष्णुपदं सुरदुर्लभम्।
जननमृत्युविवर्जितमीश्वरं,
सममवाप्य समोभवति ध्रुवम् ॥३६॥

अन्वयः—पुनः अतीव विशेषसुखप्रदं सुरदुर्लभम् विष्णुपदं मिलति, जननमृत्युविवर्जितम् समम्, ईश्वरम् अवाप्य ध्रुवम् समोभवति।

सं० टीका—पुनः मृत्युतरणानन्तरम् अतीव विशेषम् विशिष्टं यत् सुखम्, तत्प्रदम्, सुराणां देवानां दुर्लभं विष्णुपदं भगवत्स्थानं मिलति प्राप्नोति। तत्र-जननमृत्युविवर्जितम् जन्ममरणरहितं, समम्, सर्वस्वरूपम् ईश्वरं अवाप्य प्राप्य, ध्रुवं निश्चितम् समस्तत् समो भवति। समैश्च समतामेति, इति नीतिवचनात्॥

हिन्दी टीकाः—फिर मृत्यु तरने के बाद अनन्त सुख देनेवाला देवताओं को दुर्लभ विष्णुपद प्राप्त होता है। जन्म-मृत्यु से रहित सर्व स्वरूप ईश्वर को प्राप्त होकर पुरुष भी तद्रूप हो जाता है। अर्थात् भगवत् लोक में रहनेवाले सब चतुर्भुजरूप हो जाते हैं॥ ३६॥

वसंततिलकाः—

कर्मैव कारणमिदं कथयन्ति मुख्यम्,
मर्त्यस्य शास्त्रकथितं भवसिंधुपाते।
तत्कर्म चाखिलमरं हरयेऽर्पयित्वा,
मुक्तो भव स्वकृतकर्मसमर्पणेन॥ ३७॥

अन्वयः—मर्त्यस्य, भवसिंधुपाते शास्त्र-कथितम्, इदं कर्मैव मुख्यं कारणम् इति कथयन्ति। विद्वांसः इति शेषः। तस्मात् कारणात्, अखिलं कर्म हरये शीघ्रम् अर्पयित्वा, स्वकृतकर्मसमर्पणेन, मुक्तो भव।

सं० टीका:—मर्त्यस्य, मनुष्यस्य भवसिंधुपाते संसारसमुद्रपतने शास्त्र कथितम् वेदागमविहितम् इदं कर्म एव मुख्यं प्रधानं कारणं निर्मित्तम्, इति कथयन्ति वद्न्ति, विद्वांसः इति तत् तस्मात् कर्मणो मुख्यकारणत्वात, अखिलं संपूर्णम् स्वकृतं कर्म शीघ्रं हरये भगवते अर्पयित्वा समर्प्य स्वकृतस्य कर्मणः समर्पणेन मुक्तो भव जन्ममरणबन्धनरहितो भव ॥

हिन्दी टीकाः—मनुष्य का संसार समुद्र में पतन का कारण शास्त्र से कहा हुआ यह कर्म ही मुख्य कारण है अतः संपूर्ण किए हुए कर्म शीघ्र ही भगवान् को अर्पण कर संसार से मुक्त हो जायँ ॥ ३७॥

वंशस्थः—

यदाऽयमात्मा मनसाहि युज्यते,
समेति चेतः करणेन वैतदा ।
युनक्ति चार्थेन समं यदेन्द्रियं
भवेत् तदाऽक्षप्रभवावबोधनम् ॥ ३८ ॥

अन्वयः—यदा अयम् आत्मा, मनसा, हि युज्यते, तदा .चेतःकरणेन, समेति, यदा इन्द्रियं अर्थेन समम् युनक्ति तदा अक्षप्रभवावबोधनं भवेत् ।

सं० टीका :—यदा अयम् आत्मा, मनसा, चित्तेन सह संयोगं कुरुते, तदा चेतः करणेन इंद्रियेण समेति संगच्छते । यदा इन्द्रियं अर्थेन विषयेण सह युनक्ति योगं करोति एवं इंद्रियजन्यसाक्षात्कारो भवति । अक्षेभ्यः इन्द्रियेभ्यः प्रभवः उत्पत्तिर्यस्य तत् । तच्च अवबोधनं च । तत् इन्द्रियज्ञानं तदा भवेत् । अत उक्तम् प्राचीन न्याये :—आत्मा मनसा संयुज्यते, मन इन्द्रियेण इन्द्रियमर्थेन ततः प्रत्यक्षम् इति ।

हिन्दी टीका :—जब यह आत्मा मन के साथ संयोग करता है और वह मन जब इन्द्रिय के साथ संयोग करता है और वह इन्द्रिय अपने विषय के साथ मिलती है तब प्रत्येक वस्तु का साक्षात्कार होता है ॥ ३८ ॥

पंचचामर :—

तव प्रबोधसंयुतो भवोत्थमंगलाशुभम्,
मनो विकारमेतिनो निशम्य दुर्वचोऽपि नुः।
प्रशान्तमानसस्तु तेऽङ्घ्रि पद्म सारविद्विभो,
लिवद् भ्रमत्यनन्तगाययन् गुणान् शुभांस्तव ।।३९।।

अन्वय :—हे विभो ! तव प्रबोधसंयुतः, भवोत्थमंगलाशुभम्, नुः, दुर्वचोऽपि निशम्य, मनोविकारं नो एति। प्रशान्त मानसः, ते अंघ्रि पद्म सारविद् अलिवत्, तव गुणान् गाययन्, हे अनन्त ! भ्रमति।

सं० टीका :—हे विभो ! तव प्रबोध संयुतः त्वत्त् ज्ञानसंयुक्तः भवोत्थ-मंगलाशुभम् भवात् संसारात् उत्थमुत्पन्नं मंगलं च अशुभञ्च मंगलाशुभम् शुभा-शुभम् नुः नरस्य दुर्वचोऽपि निशम्य दुष्टवचनमपि श्रुत्वा मनोविकारं चित्त-विक्रियाम् नो एति न प्राप्नोति। कुतः प्रशान्तं मानसं यस्य स एवंभूतः सन् ते अङ्घ्रिरेव पद्मं तस्य सारवित् त्वच्चरणकमलसारवेत्ता, अलिवत् भ्रमरवत्, तव गुणान् गाययन् भ्रमति ।।

हिन्दी टीका :—हे विभो तुम्हारे ज्ञान से संयुक्त मनुष्य संसार से उत्पन्न होनेवाले शुभाशुभ मनुष्य के दुर्वचन को भी सुनकर मनोविकार को प्राप्त नहीं होता। तुम्हारे चरण कमल के सार जानने वाला शान्त चित्त वह भ्रमर के समान आपके गुणों को गाता हुआ भ्रमण करता है ।। ३९ ।।

आर्या छन्दः—

प्रकृतिपुरुषसंयोगाज्जलवुद्‌वुदवदसुभृतां जनिर्भवति,
सरितइवार्णव एते त्वयि लीयन्ते पुनः कल्पे ।। ४० ।।

अन्वयः—असुभृतां जनिः प्रकृतिपुरुषसंयोगात् जलबुद्बुदवत् भवति। पुनः कल्पे, अर्णवे सरित इव त्वयि लीयन्ते ।।

संस्कृत टीका—सृष्टयादौ असुभृताम्, असून्, प्राणान् बिभ्रति धारयन्त्य-सुभृतः प्राणिनस्तेषाम् असुभृताम् जीवानाम्, जनिः उत्पत्तिः प्रकृतिश्च पुरुषश्च तौ तयोः संयोगात् जले बुद्बुदम् तद्वत् भवति। पुनः कल्पे प्रलयसमये, अर्णवे समुद्रे सरित इव नद्य इव त्वयि परमेश्वरे सर्वेऽपि जीवाः लीयन्ते लयं प्राप्नुवन्ति।

हिन्दी टीका—सृष्टि के आदि में प्राणियों की उत्पत्ति प्रकृति और पुरुष के संयोग से जलबुद्बुदवत् होती है और प्रलयकाल में समुद्र में नदी जैसे लीन होती है। वैसे ही उस परमेश्वर में सब जीव लीन हो जाते हैं ॥ ४० ॥

वंशस्थ—

अनन्त तेऽनन्ततयात्मनः प्रभो-
रन्तं द्युपाला अपि नेयुरीश्वर।
सत्यन्त आनन्दघनावगम्यते,
सर्वज्ञ आस्से तदवैषि नो स्वयम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः—हे ईश्वर! हे अनन्त! हे आनंदघन! प्रभोः आत्मनस्ते अनन्ततया द्युपाला, अपि अन्तम् न, ईयुः कुतः अन्ते सति। अवगम्यते। त्वम् सर्वज्ञ आस्से तत्, स्वयम्, नो अवैषि।

संस्कृत टीकाः—हे अनन्त! न विद्यते अन्तो यस्य स तत् संबुद्धौ हे ईश्वर! हे आनन्दघन! प्रभो, समर्थस्य, आत्मनः परमात्मनस्ते अनन्त-तया अनन्तत्वेन, द्युपालाऽपि द्युस्वर्गादि लोकं पालयन्तीति तथोक्ता लोकपाला अपि अन्तम् अन्तिमावधिं न, ईयुः न प्रापुः। कुतः अन्ते सति अन्तसत्वे अन्त अवगम्यते ज्ञायते वस्तुसत्वे वस्तुज्ञानम् भवति। असत्वे ज्ञानं कुतः। अतएव त्वं सर्वज्ञ आस्से सर्वज्ञोसि तथाऽपि स्वयं त्वम् अन्तं आत्मनोन्तं न अवैषि न जानासि। तर्हि सर्वज्ञत्वं कथं तत्र शशशृंगज्ञानम्।

यथा सर्वज्ञत्वबाधकं न भवति तद्वत् न सर्वज्ञत्वे हानिः। वस्तुनोऽभावात्। अन्ताभावादन्तस्य ज्ञानं भवितुं नार्हति।

हिन्दी टीकाः—हे अनन्त! समर्थ आपके अनन्त रूप होने से आपका अन्त लोकपाल भी नहीं प्राप्त कर सके। क्योंकि अन्त होने पर ही अन्त जाना जाता है। जब अंत है ही नहीं तो कहाँ से जाना जाएगा। आप सर्वज्ञ हैं तथापि स्वयं अन्त नहीं जानते हैं ॥४१॥

वसंततिलकाः—

धीर्धीमतः सुनिपुणा विदसत्यमर्त्य,
देहेन सत्यममृतं समुपैति योऽजम्।
मूढोऽन्यथा सकलशास्त्रकृतश्रमोऽपि,
मानुष्यरत्नमपहाय स आत्महोक्तः ॥४२॥

अन्वयः—धीमतः सुनिपुणा धीः सा इति शेषः। यः असत्यमर्त्यदेहेन सत्यम्, अमृतम्, अजम् समुपैति अन्यथा, सकलशास्त्रकृतश्रमोऽपि स मूढः मानुष्यरत्नम् अपहाय स आत्महा, उक्तः॥

सं० टीका—धीमतः बुद्धिमतः सुनिपुणा अतिचतुरा धी बुद्धिः सा एव। यः पुरुषः असत्यमर्त्यदेहेन मर्त्यस्य देहः मर्त्यदेहः असत्यश्चासौ मर्त्यदेहश्च तेन मिथ्यामरणधर्मयुक्तेन शरीरेण, सत्यम् सत्यस्वरूपम् अमृतम्, मोक्षस्तम्, अजम् जन्मरहितम् परमेश्वरम् समुपैति प्राप्नोति स एव विद् विद्वान् धीमान्। अन्यथा भगवत्प्राप्त्यभावे सकलशास्त्रकृतश्रमोऽपि पठितसर्वशास्त्रोऽपि। मूढः मूर्खः स मनुष्यदेहरूपम्, अमूल्यरत्नम् विनाश्य स आत्महा आत्मनाशकश्च उक्तः। अत्रोच्यते, कथमात्मनाशक इति—न जायते म्रियते वा कदाचित् इति भगवद्वचनात् नात्मा म्रियते तत्रोच्यते—

पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा इत्यपि भगवदुक्तत्वात् मानुष्यं प्राप्य दुष्टैः कर्मभिः नीचयोनिषु जीवं पातयति स एव आत्महा। एवं भूता आत्मघातिनः नीचयोनिषु गच्छन्ति।

अत्र श्रुतिः—असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृत्ताः। तांस्ते प्रेत्याऽपि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः। इति। (यजुर्वेद अध्याय ४०)।

हिन्दी टीकाः—बुद्धिमान् पुरुष की वही श्रेष्ठ बुद्धि है जिससे वह नाशवान् मनुष्य शरीर से अविनाशी सत्यस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करता है नहीं तो सर्व शास्त्र पढ़ा हुआ विद्वान् भी मूर्ख के समान है जो मनुष्य देहरूपी रत्न को नष्ट कर आत्महत्यारा बनता है ॥४२॥

भुजङ्गप्रयातम्ः—

मुमुक्षुस्त्यजेत् क्रोधकामौ च लोभम्,
तमोद्वारमेतत्त्रयं चात्मनाशम्।
विमुक्तस्त्रिभिः श्रेयसि प्राप्तबुद्धिः,
सुसम्पाद्य सत्कर्ममोक्षं लभेत ॥ ४३ ॥

अन्वयः—मुमुक्षुः क्रोधकामौ लोभञ्च त्यजेत् यतः एतद् त्रयम्। आत्मनाशम् तमोद्वारम् अस्ति त्रिभिर्विमुक्तः श्रेयसि प्राप्तबुद्धिः सन् सत्कर्म सुसम्पाद्य मोक्षं लभेत।

सं० टीकाः—मोक्तुमिच्छुर्मुमुक्षुः मोक्षार्थी क्रोधश्च कामश्च तौ लोभञ्च त्यजेत् जह्यात्। एतत् त्रयं कामादित्रितयम् आत्मानं नाशयति तत् आत्मनाशकम् तमोद्वारम् तमसः नरकस्य द्वारम् द्वारभूतम्, त्रिभिः त्रिसंख्याकैरेभिर्विमुक्तस्त्यक्तः श्रेयसि कल्याणे, प्राप्ता बुद्धिर्यस्य एवंभूतः सन्, सत्कर्मसुसम्पाद्य = कृत्वा मोक्षं लभेत = मोक्षं प्राप्नुयात्।

हिन्दी टीकाः—मोक्षार्थी आत्मा का नाश करनेवाले नरक के द्वार भूत, काम, क्रोध एवं लोभ इन तीनों का त्याग करे। इन तीनों से रहित होकर कल्याण के लिये बुद्धि प्राप्त करता है और सत्कर्म करके मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ ४३ ॥

पृथ्वीः—

स्वनिर्मितविचित्रयोनिषु विशन्निव स्वेच्छया-
णुदीर्घतररूपतो ह्यनलवत् सदा भाससे।
अमूषु वितथासु ते वितथ धाम जानन्ति ये,
समं विरहितापणामलहृदस्त एकं रसम् ॥४४॥

अन्वयः—स्वेच्छया स्वनिर्मितविचित्रयोनिषु विशन्निव, अणुदीर्घतररूपतः अनलवत् त्वं सदा भाससे हि। वितथासु अमूषु अवितथधाम ये जानन्ति। ये विरहितापणामलहृदः ते एकं रसम् समं जानन्ति ॥

सं० टीका—स्वेच्छया यदृच्छया, स्वेन निर्मितासु रचितासु विचित्रासु विविधासु योनिषु पुरीषु विशन्निव प्रवेशं कुर्वन्निव अणु च दीर्घतरं च अणुदीर्घतरे रूपे तेभ्यः अनलवत् सूक्ष्मस्थूलकाष्ठादिभेदेन भिन्नं-भिन्नं सूक्ष्मस्थूलरूपम् यदग्नितेजस्तद्वत्, मशकहस्त्यादिषु प्रविशन् त्वम् भाससे प्रकाशसे। वितथासु मिथ्याभूतासु अमूषु सर्वासु योनिषु, अवितथधाम ये सत्यं तेजः जीवस्वरूम् ते तव जानन्ति विरहितापणामलहृदविरहितस्त्यक्त आपणो व्यवहारः प्रपञ्चरूपो यैस्ते विरहितापणा अतएव अमलं हृद् येषां ते अमलहृदः। विरहितापणाश्च तेऽमलहृदश्च इति, अतः ते, एकम् रसं ब्रह्म समं सर्वजगत् जानन्ति रसो वै सः इति श्रुतेः सर्वं खलु इदं ब्रह्म जानंतीत्यर्थः ॥

हिन्दी टीका—स्वेच्छा से स्वयं रचित नाना प्रकार की योनियों में प्रवेश करके सूक्ष्म स्थूलरूप से मशक गज आदि शरीरों में अग्नि के समान काष्ठ भेद से सूक्ष्म स्थूल रूप जैसे अग्नि प्रतीत होता है वैसे आप प्रकाशित होते हैं। इन मिथ्याभूत योनियों में सत्य तेज आपका जीवस्वरूप को जो जानते हैं वे संपूर्ण प्रपंचों का त्याग कर निर्मल हृदयवाले संपूर्ण जगत को एक ब्रह्मरूप देखते हैं ॥४४॥

पञ्चचामरः—

तवोपयोगिविग्रहं हितप्रियात्ममित्रवत् ,
चरन्त्यहो हिते प्रिये प्रभो बतात्मनि त्वयि ।
रमन्ति नोसदात्मजाद्युपासनात्मघातिनः,
कुवासनोरुभीतिदे भ्रमन्ति ते भवे भृशम् ॥४५॥

अन्वयः—हे प्रभो ! तव उपयोगिविग्रहम् हितप्रियात्ममित्रवत् , चरंति अहो इति आश्चर्ये हिते, प्रिये, आत्मनि त्वयि, बत, इति खेदे, असदात्मजाद्युपासनात्मघातिनः नो रमन्ति अतः ते कुवासनोरुभीतिदे, भवे, भृशम् ते आत्मघातिनः भ्रमन्ति इति निश्चयेन ।

सं० टीका—हे प्रभो ! उपयोगोऽस्यास्तीति उपयोगी विग्रहश्च तं, तव उपयोगिविग्रहम् सेवा कर्मोपयोग्यम् शरीरम् हितं च प्रियं च आत्मा च मित्रं च हितप्रियात्ममित्राणि तैस्तुल्यं तद्वत् । चरंति आचरन्ति अहोहिते हितकरे प्रिये प्रेयसि आत्मनि सर्वात्मनि त्वयि त्वद्विषये बत इति खेदे असदात्मजाद्युपासनात्मघातिनः असतां क्षणिकानां आत्मजादीनां उपासनया सेवया आत्मानं घातयन्तीति आत्मघातिनः आत्मनाशकास्ते नो रमन्ति अतस्ते कुवासनोरुभीतिदे कुत्सिताभिर्वासनाभिः पुत्रधनादिवांछाभिः उरुभीतिदे भयप्रदे भवे संसारे भृशम् पुनः पुनः ते भ्रमन्ति इति निश्चयेन ॥

हिन्दी टीका—हे प्रभो ! आपकी सेवा के योग्य शरीर की तो हितकारक प्यारे मित्र और आत्मा के तुल्य समझता है और हितकारक प्रिय सर्वात्मा आपके विषय में क्षणिक नाशवान पुत्रादिकों की सेवा से आत्मा का नाश करनेवाले आत्मघाती आप में प्रेम नहीं करते हैं । वे कुत्सित स्त्री पुत्रादि इच्छाओं से भय देनेवाले संसार में बार-बार भ्रमण करते हैं ॥४५॥

उपजातिः—

श्रेयः समिच्छन्ति जनाः समेऽपि,
तत्साधनं कर्म न कुर्वते हि ।
सदेश्वरे हृल्लयता च मुक्त्यै,
सक्तिस्तु भोगेषु भवप्रदा च ॥४६॥

अन्वयः—समेऽपि जनाः श्रेयः समिच्छन्ति तत् साधनं कर्म हि न कुर्वते ईश्वरे सदा हृल्लयता अमृतप्रदा भोगेपु सक्तिस्तु भवप्रदायिनी ।

सं० टीका—समेऽपि सर्वेऽपि जनाः लोकाः श्रेयः मोक्षम् समिच्छन्ति वाञ्छन्ति तत् साधनम् मोक्षोपयोगी कर्म हि न कुर्वते न कुर्वन्ति । ईश्वरे भगवति सदा अनिशं हृदः लयता, लीनता, अमृतस्य मोक्षस्य प्रदा प्रदायिनी भोगेषु विषयेषु सक्तिरासक्तिस्तु भवप्रदायिनी संसारदात्री । अत्रोच्यते, मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः । बन्धनं विषयासक्तेः परे ब्रह्मणि मुक्तये अतः मनसि भगवत्या सक्ते सति ॥

हिन्दी टीका—सब लोग मोक्ष की इच्छा करते हैं परन्तु उसका साधक कर्म नहीं करते हैं ईश्वर के विषय में निरन्तर मन को लगा लेना मोक्षदायक है और विषयों में मन की आसक्ति संसार को देती है ॥ ४६ ॥

उपजातिः—

पतंगमीनेभकुरङ्गभृङ्गा,
एकेन्द्रियाधीनतया मृताश्च ।
पञ्चेन्द्रियायत्तनरः क्षयं नो,
किमेष्यति स्वीकृतपञ्चभोगः ॥४७॥

अन्वयः—पतंगमीनेभकुरंगभृङ्गा यदा एकेन्द्रियाधीनतया मृताः तदा पञ्चेन्द्रियायत्तनरः स्वीकृतपञ्चभोगः किम् क्षयं नो एष्यति ।

सं० टीका—पतंगश्च मीनश्च इभश्च कुरङ्गश्च भृङ्गश्च इति—पतंगमीनेभकुरंगभृङ्गाः। पतंगः शलभः, मीनः मत्स्यः, इभः करी, कुरङ्गः मृगः, भृङ्गः षट्पदः एते यदा एकेन्द्रियाधीनतया एकस्य इन्द्रियस्य अधीनतया नेत्रजिह्वोपस्थश्रोत्रघ्राणवशतया क्रमशः मृताः पञ्चत्वमाप्ताः। तदा पञ्चानाम् इन्द्रियाणाम् आयत्तः अधीनः पञ्चेन्द्रियायत्तः स चासौ नरश्च पञ्चेन्द्रियाधीनमनुष्यः अतएव स्वीकृताः गृहीता पञ्चभोगाः विषयाः सर्पफणा वा येन सः किम् क्षयं नाशं नो एष्यति = न गमिष्यति अर्थात् अवश्यमेव नाशं यास्यति ॥

हिन्दी टीका—पतंग मत्स्य हस्ति मृग भ्रमर ये पाँचों क्रम से नेत्र जिह्वा उपस्थ श्रोत्र इन एक-एक इन्द्रिय के वश होने से मर गये तब पाँचों विषयों को स्वीकार किया है। वह मनुष्य क्या नाश को प्राप्त नहीं होगा। अर्थात् अवश्य ही होगा ॥ ४७ ॥

वंशस्थः—

अनन्तलोकप्रनिकायरोमवद्,
यदक्षरं ब्रह्म परं परे विदुः ।
यदंशभागान्नृसुरर्षिपक्षिणः,
समुद्भवन्त्येतदशेषकारणम् ॥४८॥

अन्वयः—अनन्तलोकप्रनिकायरोमवद्, यत् परम् अक्षरं ब्रह्म परे विदुः। यद् अंशभागात् नृसुरऋषिपक्षिणः समुद्भवन्ति एतत् अशेषकारणम् ।

सं० टीका—अनन्तानाम् लोकानाम् ब्रह्माण्डानाम् प्रनिकायः समूहः रोमषु विद्यते यस्य तत्। यत् परं उत्कृष्टं अक्षरं ब्रह्म परे ब्रह्मविदः जानन्ति। यस्य अक्षरब्रह्मणः अंशः अवयवः ब्रह्मा तस्य भागः अंशः मरीच्यादिः तस्मात् नराश्च सुराश्च ऋषयश्च पक्षिणश्च नृसुरर्षिपक्षिणः मनुष्यदेवमुनितिर्यञ्चः समु-

द्भवन्ति उत्पद्यन्ते। एतत् अक्षरं ब्रह्म अशेषानाम् सर्वेषां ब्रह्मादीनां कारणम् उत्पत्तिस्थानं अस्ति ॥

हिन्दी टीका—जिस ब्रह्म के रोमों में करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं उसको ब्रह्मज्ञानी उत्कृष्ट अक्षरब्रह्म कहते हैं। जिसके अंशांश से मनुष्य देवतादि सब उत्पन्न होते हैं। यह सब ब्रह्मादियों का उत्पादक कारण है ॥४८॥

मालिनीः—

रविविधुपवनाग्निद्योयमाम्वुस्थिराहो,
हृदयवृषभसन्ध्यारात्रयः साक्षिका नुः।
शुभमशुभमथायं यद्रहो वा प्रकाशम्,
नयनविषयमेते कुर्वते ना करोति ॥४९॥

अन्वयः—रविविधुपवनाग्निद्योयमाम्बुस्थिराहो, हृदयवृषभसन्ध्यारात्रयः नुः साक्षिका। यत् रहः प्रकाशं वा अयं ना शुभमशुभम् करोति तत्; अखिलं ताः पूर्वोक्ताः नयनविषयं कुर्वते।

सं० टीका—रविश्च विधुश्च, पवनश्च, अग्निश्च, द्यौश्च, यमश्च, अम्बु च, स्थिरा च, अहश्च, हृदयश्च, वृषभश्च, सन्ध्या च, रात्रिश्च एतेषां द्वन्द्वः रात्रयः रवि-विधुपवनाग्निद्योयमाम्बुस्थिराहो हृदय-वृषभ सन्ध्या रात्रयः। नु मनुष्यस्य, साक्षिकाः साक्षिण्यः यत्, रहः गुप्तम् प्रकाशं प्रत्यक्षं वा अयं ना अयम् मनुष्यः शुभमशुभम् पुण्यं पापं वा करोति, तत्। अखिलम् सम्पूर्णम् ताः पूर्वोक्ताः। नयनयोः नेत्रयोः विषयं कुर्वते पश्यन्ति।

हिन्दी टीका—मनुष्य गुप्त या प्रकाशित जो कुछ भी शुभाशुभ कर्म करता है। उसके साक्षी द्रष्टा, सूर्य, चन्द्रमा, पवन, अग्नि, आकाश, यमराज, जल, पृथ्वी, दिन, हृदय, धर्म, सन्ध्या और रात्रि ये सब देखते हैं ॥ ४९ ॥

वंशस्थः—

अघानि कृत्वा मनुजोऽर्थसंचयं,
करोति पुत्रादिकृते नु मोहतः ।
स्वयं यमान्तेऽघजदुःखमश्नुते,
ऽर्थजं सुखं दारसुतादिको न्वहो ॥५०॥

अन्वयः—मनुजः अघानि कृत्वा पुत्रादिकृते मोहतः अर्थसंचयं करोति । यमान्ते स्वयम् अघजम् दुःखमश्नुते । अहो नु अर्थजं सुखं नु दारसुतादिकः अश्नुते ।

सं० टीका—मनुजः मनुष्यः अघानि दुरितानि कृत्वा पुत्रादिकृते सुताद्यर्थम्, मोहतः 'मोहवशात् अर्थसंचयम् धनसंचयम् करोति । यमान्ते यमस्य समीपे स्वयम् अघजम् पापजम् दुःखम् अश्नुते भुंक्ते । अहो इति आश्चर्ये नु इति वितर्के अर्थजम् धनजम् सुखम् नु दारसुतादिकः स्त्रीपुत्रादयः अश्नुते भुंक्ते अश्नुवते ।

हिन्दी टीका—मनुष्य मोहवश स्त्रीपुत्रादि के लिए पाप करके धन-संचय करता है । उस पाप का फल दुःख यमराज के पास स्वयं भोगता है और धन का सुख स्त्रीपुत्रादिक भोगते हैं । यह बड़े आश्चर्य की बात है ॥ ५० ॥

वसंत तिलकाः—

आयान्ति यान्ति भुवनेषु गतास्तु लोका,
ऊर्ध्वम् ततो हरिमहेश्वरधेनुलोकाः ।
तत्पान् समर्च्य सुहृदाऽन्विह तत्र याता,
नायान्ति तत्र विभुसन्निधिमाश्रयन्ते ॥ ५१ ॥

अन्वयः—भुवनेषु गता लोकाः आयान्ति, यान्ति ततः ऊर्ध्वं हरि-महेश्वरधेनुलोकाः सन्ति । तत्पान् समर्च्य सुहृदा तत्र याता अनु इह न आयान्ति तत्र विभुसन्निधिमाश्रयन्ते ।

सं० टीका—भुवनेषु ब्रह्मलोकपर्यन्तचतुर्दशलोकेषु गताः लोकाः ये प्राणिनः आयान्ति यान्ति च ततः उर्ध्वम् उपरि ब्रह्मलोकादुपरि इत्यर्थः। हरिमहेश्वरधेनुलोकाः वैकुण्ठशिवलोकगोलोकाः सन्ति। तत्पान् तल्लोकेशान् विष्णुशंकरकृष्णान् सुहृदा समर्च्य पूजयित्वा इह लोकत्रये याताः प्राप्ताः नायान्ति न पुनरावर्तन्ते, किन्तु तत्र विभुसन्निधिं आश्रयन्ते। विभूनाम् विष्णुशिवकृष्णानाम् सन्निधिं समीपं आश्रयन्ते प्राप्नुवन्ति तत्र तिष्ठन्ति इत्यर्थः। गोलोकस्य सर्वोपरि वृत्तित्वकथा देवीभागवते नवमस्कन्धे द्रष्टव्या।

हिन्दी टीका - ब्रह्मलोक पर्यन्त चतुर्दश भुवन के प्राणी आते हैं और जाते हैं। अर्थात् जन्म लेते हैं और मरते हैं। इन चौदहों लोक के ऊपर विष्णु (वैकुण्ठ) लोक, शिवलोक एवं गोलोक कहे गये हैं ! भक्तिपरिपूर्ण हृदय से विष्णु, शिव, कृष्ण की आराधना कर इन लोकों में गये हुए प्राणी फिर नहीं लौटते हैं। वहीं पर भगवान के सन्निधि में रहते हैं ॥ ५१ ॥

उपजातिः—

न तत्र कामाद्यरयोऽर्दयन्ति,
न क्षुत्पिपासे न जरा न शोकः ।
सारूप्यभावं परमेश्वरस्य,
प्राप्ताः सदानंदरसा वसन्ति ॥ ५२ ॥

अन्वयः—तत्र कामाद्यरयः न अर्दयन्ति, तत्र क्षुत्पिपासे न, जरा न, शोको न परमेश्वरस्य सारूप्यभावं प्राप्ताः, सदा आनंदरसा वसन्ति।

सं० टीका—तत्र वैकुंठादि लोकेषु कामादि शत्रवः न पीडयन्ति। तत्र क्षुत्पिपासे क्षुधातृष्णे नस्तः, जरा न, वृद्धावस्था न, शोको न, परमेश्वरस्य भगवतः सारूप्यभावं समानरूपताम् प्राप्ताः। सदा सर्वदा आनंदस्य रस आस्वादो येषां ते आनंदरसाः वसन्ति। ब्रह्मानंदानुभवं सदा कुर्वंते।

हिन्दी टीका—वैकुंठ आदि लोकों में कामादि शत्रु दुःख नहीं देते हैं। वहां भूख प्यास नहीं लगती है। वृद्धावस्था को भी नहीं प्राप्त होते हैं। शोक भी नहीं होता भगवान के समान रूप को प्राप्त होकर सर्वदा ब्रह्मानंद का अनुभव करते हैं ॥ ५२ ॥

वसंततिलका:—

आदौ ससर्ज कजजो ननु पंचपर्वा-
विद्यां यया जगदिदं तु भवेद् विमूढम् ।
आत्मावृतौ स्थिरतमं मम सर्जनं स्यात्,
ज्ञानात्मनित्वखिलजीवविमुक्तिरेव ॥५३॥

अन्वयः—आदौ कजजः पंचपर्वा विद्यां ससर्ज यया इदम् जगत् विमूढम् भवेत्। आत्माऽवृतौ मम सर्जनम् स्थिरतमम् स्यात् ज्ञानात्मनितु अखिल-जीवविमुक्तिरेव स्यात्।

सं० टीका—अथ सृष्ट्यादौ कं जलं तस्मात् जायते इति कजं पद्मम् तस्मात् जातः कजजो ब्रह्मा। ननु इति निश्चयेन पंचपर्वा विद्यां तन्नाम्नीम् विद्यां ससर्ज रचयामास। यया अविद्यया इदं जगत् विमूढम् मोहितम् भवेत्। आत्मनः आवृतौ आवरणे आच्छादने स्वरूपावरण इत्यर्थः। मम सर्जनं सृष्टिः स्थिरतमं अतिस्थिरतमं स्यात् ज्ञानात्मनि तु ज्ञान युक्तात्मनि तु सकलजीवानां मुक्तिरेव स्यात्।

हिन्दी टीका—ब्रह्मा ने सृष्टि के आदिकाल में विचार किया कि सब जीव ब्रह्म का अंश होने से ज्ञानवान हैं। ज्ञान से इनकी सबकी मुक्ति हो जावेगी तो मेरी सृष्टि कैसे चलेगी ? और कैसे स्थिर रहेगी ? इसलिये जीवात्माओं को अज्ञान से मोहित करने के लिये आदि में पंचपर्वा अविद्या बनाई। जिससे यह जगत मोहित हो जावे। आत्मा के आवृत हो जाने पर मेरी सृष्टि स्थिर हो जावेगी। सब आत्माओं के

ज्ञानयुक्त होने पर तो सबकी मुक्ति हो जावेगी। अतः अविद्या से सब जीवों के ज्ञान को ढक दिया ॥५३॥

इन्द्रवज्राः—

पूर्वं तमो मोहमहामुहौ च,
तामिस्रकं चांधतमिस्रकं च।
सृष्ट्वा प्रसन्नः कमलासनोऽजो-
ऽविद्या इमाः सर्गनिदानभूताः ॥५४॥

अन्वयः— पूर्वं तमो मोहमहामुहौ तामिस्रकं अंधतामिस्रकं च कमलासनः अजः सर्गनिदानभूता इमाः अविद्याः सृष्ट्वा प्रसन्नो जातः।

सं० टीका—तमः मोह महामोह तामिस्रकं, अंधतामिस्रकं च कमलासनः अजः ब्रह्मा सर्गस्य सृष्टेः निदानभूता कारणभूता इमाः अविद्याः सृष्ट्वा रचयित्वा प्रसन्नो जातः।

हिन्दी टीका—तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अंध तामिस्र इन पांच भेदवाली सृष्टि के कारण भूत अविद्या को बनाकर ब्रह्मा प्रसन्न हुआ ॥५४॥

उपजातिः—

तमः स्वरूपास्मृतिरात्मनस्तु,
मोहस्तु देहादिषु चात्मबुद्धिः।
भोगेषु चेच्छा कथितो महामुट्
तामिस्रकं भोगनिरोधने क्रुद् ॥५५॥

अन्वयः—आत्मनः स्वरूपा स्मृतिः तमः कथितम्, देहादिषु आत्मबुद्धिः मोहः कथितः। भोगेषु च इच्छा, महामुट् कथिता, भोगनिरोधने क्रुद्, तामिस्रकं कथितम्।

सं० टीका—स्वरूपस्य निजरूपस्य, आत्मनः अज्ञानम् विस्मृतिरित्यर्थः तमः कथितम् । देहादिषु शरीर स्त्री पुत्रादिषु विषयेषु आत्मबुद्धिः देहादावात्माभिमानः मोहः कथितः । भोगेषु विषयेषु इच्छा, विषय भोगेच्छा, महामुट् महामोहः कथितः भोगनिरोधने विषयोपरोधने, क्रुद् क्रोधः, तामिस्रकं कथितम् ।

हिन्दी टीका—अपने स्वरूप को भूल जाना तम कहा गया है। देहादि में आत्मा का अभिमान अर्थात् देह को ही आत्मा मानना उसको मोह कहते हैं। विषय-भोग की इच्छा को महामोह कहते हैं। क्योंकि चौरासी लक्ष योनियों में विषय सुख लेता हुआ आत्मा फिर भी इस मनुष्य जन्म में विषय-भोग की इच्छा करे इससे अधिक महामोह क्या होगा ॥ ५५ ॥

उपजातिः—

भोगस्य नाशे त्वहमेव नूनम्,
मृतोऽस्मि रोदित्यतिकष्टयुक्तः ।
अज्ञानतो दुःखपरम्पराढ्यो,
नाप्नोति शान्तिं नुतदायमात्मा ॥ ५६ ॥

अन्वयः—भोगस्य नाशेतु अति कष्टयुक्तः, अहमेव मृतोऽस्मि, इति रोदिति । नूनमिति निश्चयेन । अज्ञानतः दुःखपरम्पराढ्यः अयमात्मा, शान्तिं नाप्नोति ।

सं० टीका—भोगस्य, विषयस्य, पुत्रादिकस्य, नाशे तु अतिकष्टयुक्तः अत्यंत-दुःखसंयुक्तः, अहमेव मृतोऽस्मि इति रोदिति रोदनं करोति, अज्ञानतः अविद्या-वशात् दुःखपरंपराढ्यो दुःखातिशययुक्तः, अयमात्मा, शान्तिं सुखं नाप्नोति न लभते ।

हिन्दी टीका—पुत्रादि विषय के नाश होने पर अत्यंत कष्ट युक्त यह आत्मा रोता है और अज्ञान से अत्यन्त दुःखी होकर शान्ति को नहीं पाता है ॥ ५६ ॥

पंचचामरः—

सचांश ईश्वरस्य सन्नजां यदा नु गच्छति,
भजन् गुणान् समश्नुते समानरूपतां तदा।
अविद्ययाज्ञवत् भवंश्च मृत्युमेति सत्वरम्,
लभेत संसृतिं पुनर्न यावदात्मबोधनम् ॥५७॥

अन्वयः—स च ईश्वरस्य अंशः सन् यदा अजाम्, अनुगच्छति, तदा गुणान् भजन् तदा समानरूपतां अविद्यया अज्ञवद्समश्नुते; भवं, सत्वरम् मृत्युम्, एति। यावत् आत्मबोधनं न तावत् संसृतिं लभेत।

सं० टीका—सजीवः ईश्वरस्य भगवतः अंशः सन्नपि। चाऽप्यर्थे "ममैवांशो जीवलोके" इति भगवत्वचनात्। यदा अजां मायां अविद्यामित्यर्थः, अनुगच्छति अनुयाति तदा तद्गुणान् रूपादीन् भजन् सेवमानः। अज्ञायाः अविद्यायाः संगेन स्वयं ज्ञानवानानंदयुक्तः सत्यस्वरूपः सन्नपि, अज्ञः आनन्दरहितः च भवति। अविद्यया मायया, अज्ञवत् मूर्खवत् ज्ञानरहितः इव भवन्, सत्वरं शीघ्रं मृत्युं अत्यंतविस्मृतिं एति प्राप्नोति। "मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः, इति वचनात् भगवदंशादिकं स्वज्ञानं विस्मरति, इत्यर्थः। यावत् आत्मबोधनं आत्मज्ञानं न तावत् संसृतिं संसारं लभेत प्राप्नुयात्। आत्मज्ञानं विना संसारनिवृत्तिर्न सम्भवति "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" इति मुक्त्यभावात् ॥

हिन्दी टीका—वह जीव ईश्वर का अंश होते हुए भी जब अविद्या के पीछे जाता है और उसके गुणों को तत्वादिकों को सेवन करता है तब जड़ प्रकृति के समान स्वयं भी जड़ अज्ञानी हो जाता है। अविद्या के संग से स्वयं अज्ञानी के समान होकर निज स्वरूप भगवदंशादिक को भूल जाता है और संसार में बार-बार चक्कर काटता है जबतक आत्मज्ञान न हो तबतक संसार में भटकता है ॥ ५७ ॥

आर्या छन्द :—

रक्तमणेः प्रतिबिंबाच्छ्वेतःकाचोहि रक्ततां याति।
प्रज्ञः प्रकृतेर्बिम्बात् तद्वत् जीवो जड़ो भवति ॥५८॥

अन्वयः—यथा श्वेतःकाचः रक्तमणेः प्रतिबिंबात् रक्तत्वं याति, तद्वत् जीवः प्रज्ञः प्रकृतेः बिंबात् जड़ो भवति।

सं० टीका—यथा श्वेतःकाचः श्वेतवर्णः काचः रक्तमणेः प्रतिबिंबात् रक्तवर्णताम् याति तद्वत् ज्ञानवान् आनन्दयुक्तोऽपि जीवः जड़प्रकृतेः प्रतिबिंबात् सन्निकटसंगात् जडः ज्ञानरहितो भवति।

हिन्दी टीका—उपर्युक्त श्लोक में कहा हुआ अर्थ स्पष्ट करने लिये दृष्टान्त—जैसे सफेद काच के अन्दर लाल मणि का प्रतिबिंब पड़ने पर लाल प्रतीत होता है और वह काच अपने को लाल समझता है, वैसे ही जड़ आनंद रहित प्रकृति के प्रतिबिंब पड़ने से ज्ञानवान् भी जीव अपने को अज्ञानी समझता है ॥ ५८ ॥

वंशस्थः—

अजाप्रसंगाद् हरिशावकोवने।
यथा स्वरूपास्मृतिमाप मौढ्यतः ॥
बुधोऽन्वजा संगवशादजोऽप्ययम्।
तथाऽत्मनो विस्मृतिमेति दुःखदाम् ॥५९॥

अन्वयः—यथा अजाप्रसंगात् हरिशावकः वने मौढ्यतः स्वरूपास्मृतिं आप तथा बुधः अजोऽपि अयं अजासंगवशात् दुःखदाम् आत्मनो विस्मृतिं एति।

सं० टीका—वने कानने, अजाप्रसंगात्, यथा मौढ्यतः अज्ञानतः हरिशावकः सिंहबालकः स्वरूपास्मृतिं स्वरूपविस्मरणम् आप प्राप, तथा बुधः ज्ञानवान् अजोऽपि अजन्माऽपि अयं जीवः अजायाः मायायाः संगवशात् संगाधीनतया दुःखदाम् संसारदुःखप्रदाम् आत्मनः स्वरूपस्य विस्मृतिं एति आप्नोति।

हिन्दी टीका—वन में जैसे सिंह का बालक जन्म लेते ही बकरी चरानेवाले के हाथ में आ जाने से बड़ा होकर भी बकरियों के संग से अपने को बकरा समझता था अर्थात् अपने स्वरूप को भूल गया वैसे

ही ज्ञानवान अजन्मा भी यह जीवात्मा आनन्द स्वरूप भी माया के संग से अपने स्वरूप को "मैं ब्रह्म का अंश हूँ और ज्ञानवान हूं" इस तत्व को भूल जाता है। इसी से दुःख देनेवाले संसार में बार-बार जन्म लेता है॥ ५९॥

शंका—यह जीवात्मा ज्ञानवान और ब्रह्म का अंश होने पर माया के संग से अज्ञानयुक्त कैसे होता है? जैसे श्वेत काच रक्तमणि के प्रतिबिंब से रक्त (लाल) होता है। वैसे ही जड़ अज्ञानी प्रकृति (माया) के संग से यह जीवात्मा भी जड़ (अज्ञानी) हो जाता है॥ ५९॥

माया को जीतने का साधनः—

वंशस्थः—

अजां विजेतुं सततं हरिं स्मरेत्,
तदीय नामानि सदा हृदा जपेत्।
सुकर्मभिः सत्वविवर्धनेन चा-
प्यबोधमस्तं प्रणयेच्च विद्यया॥ ६०॥

अन्वयः—अजां विजेतुं हरिं सततं स्मरेत् तदीयनामानि सदा हृदा जपेत्। सुकर्मभिः सत्वविवर्धनेन च विद्यया अबोधं अस्तं प्रणयेत्।

सं० टीका—अजा मायां विजेतुम् स्वायत्तीकर्तुम् सततम् निरन्तरम् हरिम् भगवन्तम् स्मरेत्। ध्यायेत् अनिशम् सततम् तदीयनामानि तस्येमानि तदीयानि नामानि जपेत्। सुकर्मभिः सत्कार्यैः सत्वविवर्धनेन सत्वगुणवृद्ध्या बुधः विद्वान् विद्यया ज्ञानेन अबोधमज्ञानमस्तं प्रणयेत् प्रापयेत्।

हिन्दी टीका—माया को जीतने के लिये निरंतर भगवान् का स्मरण करे और हमेशा भगवान् के नाम मंत्रों का जप करे और अच्छे कर्मों से सत्वगुण को बढ़ाकर विद्वान् ज्ञान के द्वारा अज्ञान को दूर करे॥ ६०॥

वंशस्थः—

मनो यदा स्याद् विमलं च सात्विकं,
लगेत्तदानन्तपदारविंदयोः ।
ततश्च सत्वात्ममनःकृतेऽशनं,
ह्यभीप्सितं सात्विकसर्ववस्तुजम् ॥६१॥

अन्वयः—यदा मनः विमलं सात्विकं स्यात् तदा अनन्तपदारविन्दयोर्लगेत् ततश्च सत्वात्ममनःकृते सात्विकसर्ववस्तुजं अशनं अभीप्सितम् हि ।

सं० टीका—यदा मनश्चित्तं विमलं निर्मलं सात्विकं सत्वगुणसंपन्न च भवेत् तदा अनन्तपदारविन्दयोः भगवत्चरणकमलयोर्लगेत् ततस्तस्मात् कारणात् सत्वात्ममनःकृते सात्विकात्मचित्तार्थम् सात्विकं सर्ववस्तुजं सत्वगुणयुक्तसमस्त-वस्तुजं अशनं भोजनम् अभीप्सितं अभीष्टं हि ॥

हिन्दी टीका—जब चित्त निर्मल और सात्विक होता है तब भगवान् के चरणारविंद में लगता है। इसलिये शुद्ध सत्वगुण संपन्न मन बनाने के लिये पण्डित लोग हमेशा सात्विक वस्तु का ही सब भोजन करे ॥ ६१ ॥

शार्दूलविक्रीडितम्—

अन्नं सौम्यमनः श्रुतेर्वचनतो यादृक्च तद्भक्ष्यते,
हृत्स्यात्तादृगियं जनश्रुतिरिति ख्याता च संश्रूयते ।
तद्धृत्सत्वमयं सदात्मनि रतं ज्ञानं च मुक्तिप्रदम्,
तस्मात् सात्विकवस्तुसेवनमृते निःश्रेयसं दुर्लभम् ॥६२॥

अन्वयः—अन्नं सौम्यमनः इति श्रुतेर्वचनतः तत् यादृक् भक्ष्यते तादृक् हृद्भवति इयं जनश्रुति रपि, ख्याता संश्रूयते। तत् सत्वमयं हृत् सदा आत्मनि रतं भवति। मुक्तिप्रदं ज्ञानं च लभते तस्मात् सात्विकवस्तुसेवनम् ऋते निःश्रेयसं दुर्लभम् ।

सं० टीका—"अन्नं वै सौम्यमन" इति उपनिषद्वचनात् तदन्नं यादृक् सत्वादिगुणसंयुक्तं भक्ष्यते भुज्यते तादृक् सत्वादिगुणयुक्तं ह्यन्मनो भवति इति लोकेऽपि जनश्रुतिः ।

"जैसा खावै अन्न, वैसा होवे मन" इति ख्याता प्रसिद्धा संश्रूयते आकर्ण्यते । तव तस्मात् सत्वगुणस्वरूपशुद्ध हृत् हृदयम् सदा आत्मनि भगवति रतम् प्रेम युक्तं भवति मुक्तिप्रदं ज्ञानं च लभते जायते सत्वात् संजायते ज्ञानम् इति भगवद्वचनात् तस्मात् सात्विकवस्तुसेवनं विना मोक्षं दुर्लभम् ॥

हिन्दी टीका--अन्न से ही मन होता है यह उपनिषद् का वचन है इसीलिये लोक में भी जैसा खावै अन्न वैसा होवे मन ऐसा कहावत है इसलिये मन शुद्ध सत्व गुण युक्त ही भगवान् में प्रेम करता है और ज्ञान भी प्राप्त करता है अतः सात्विक वस्तु के सेवन विना मोक्ष प्राप्त होना दुर्लभ है ॥ ६२ ॥

वसन्त तिलका :—

ध्यानाम्बुदेशसमयागममन्त्रजन्म,
संस्कारकर्मजनभोजनसंज्ञकानि ।
एकादशेशगदितानि च कारणानि,
वस्तूनि सत्वरजसोस्तमसश्च नूनम् ॥६३॥

अन्वयः—ईशगदितानि ध्यानादीनि एकादशवस्तूनि सत्वरजसोः तमसश्च कारणानि भवन्ति नूनम् ।

सं० टीका—ध्यानञ्च, अम्बु च, देशश्च, समयश्च, आगमश्च, मन्त्रश्च, जन्म च, संस्कारश्च, कर्मंच, जनश्च, भोजनंच तानि संज्ञा येषां तानि ध्यानं चिन्तनम्, अम्बु जलम्, देशः जनपदः प्रदेशो वा समयः कालः प्रातरादि । आगमः शास्त्रम्, मन्त्रः जन्म जनिः संस्कारः जातकर्मादि, कर्म सात्विकादि--शुभाशुभम्, जनः लोकः, भोजनम् अशनम् एतानि सर्वाणि प्रत्येकं त्रिविधानि सत्वादि-

भेदेन, ईशेन भगवता कृष्णेन कथितानि, एकादशवस्तूनि। सत्वरजसोः सत्व-रजोगुणयोः तमसश्च तमोगुणस्य च कारणानि निमित्तानि। भवन्ति पूर्वोक्तैकादश-वस्तूनां सत्वादिभेदेन सात्विक, राजस, तामसत्वं भवति। तस्मात् यादृग् गुण-वाञ्छा भवेत् तादृग् गुणमयवस्तुसेवनं कर्त्तव्यम्।

हिन्दी टीका :—भगवान् कृष्ण ने सत्त्वादि गुणों के उत्पादक कारण ये एकादश वस्तुएँ कही हैं। ध्यान, जल, देश, काल, शास्त्र, मंत्र, जन्म, संस्कार, कर्म, जन, भोजन ये ग्यारह वस्तुएँ सत्वादि गुणों के कारण हैं। जिस गुण को प्राप्त करने की इच्छा हो वैसे ही गुण वाले पदार्थ का सेवन करे ॥ ६३ ॥

आर्या :—

सत्वरजस्तमसां वा एकादश गदितानि च निदानानि।
सत्वादिकभेदेन त्रिविधानि च तानि सर्वाणि ॥६४॥

अन्वयः—सत्वरजस्तमसां वै एकादश निदानानि गदितानि, तानि सर्वाणि सत्वादिकभेदेन त्रिविधानि भवन्ति ॥

सं० टीका—सत्वरजस्तमसां गुणानाम् यानि पूर्वोक्तानि एकादश निदानानि कारणानि गदितानि कथितानि तानि सर्वाणि सत्वादिकभेदेन त्रिविधानि भवन्ति ॥

हिन्दी टीका—सत्वगुण, रजोगुण तमोगुण तीनों के, जो ग्यारह कारण कहे गए हैं। वे सब सत्वादिक भेद से तीन प्रकार के होते हैं। जैसे :—प्रत्यक्ष उदाहरण :—

ध्यान तीन प्रकार का होता है—

१. सात्विक ध्यान भगवान का करना।
२. स्त्री आदि विषयों का ध्यान राजस।
३. मांसादि वा नीच कर्मों का चिन्तन तामस।

जल भी तीन प्रकार का है।

१. गंगादि नदियों का जल,
सरोवर कूप आदि से स्वतः शुद्ध निकाला हुआ सात्विक जल
२. नल आदि हर एक जाति के हाथ से लिया हुआ जल राजस।
३. होटल आदि में अपवित्र और उच्छिष्ट जल तामस।

देश प्रदेश के भी तीन भेद होते हैं—

१. देवस्थान, तीर्थस्थान आदि पवित्र प्रदेश सात्विक।
२. पुण्य स्थान आदि साधारण राजसिक।
३. वेश्यागृह, कसाई इत्यादि का स्थान तामसिक।

काल के भी तीन भेद होते हैं—

१. ब्रह्ममुहूर्त आदि सात्त्विक।
२. मध्याह्न आदि राजसिक।
३. अर्ध रात्रि आदि तामसिक।

शास्त्र भी तीन प्रकार का होता है—

१. भागवद् गीतादि सत्शास्त्र सात्विक।
२. अर्थ शास्त्रादि राजसिक।
३. मारणमोहनादि उपन्यासादि तामसिक।

मन्त्र भी तीन प्रकार के होते हैं—

१. ॐ नमो भगवते वासुदेवाय गायत्र्यादि सात्विक।
२. लक्ष्मी प्राप्ति की इच्छा से किए हुए राजसिक मन्त्र।
३. मारण मोहन आदि तामसिक।

जन्म भी तीन प्रकार के होते हैं—

१. ब्राह्मणादि जाति जन्म सात्विक।
२. मध्यमवर्ग जन्म राजसिक।
३. चाण्डालादि जन्म तामसिक।

संस्कार के तीन भेद—

१. वेद विधि से किया हुआ संस्कार सात्विक।
२. अहङ्कारादि युक्त संस्कार राजसिक।
३. केवल लोकाचार से किया हुआ संस्कार तामसिक।

कर्म के तीन भेद—

१. जप तपादि सत्कर्म सात्विक।
२. व्यापारादि कर्म राजसिक।
३. द्यूतादि कर्म तामसिक।

लोक के तीन भेद—

१. सत्पुरुष संग राजसिक।
२. लोभी व्यापारी इत्यादि का संग राजसिक।
३. वेश्या हिंसक इत्यादि संग तामसिक।

भोजन के तीन भेद—

१. सात्विक पदार्थों का भोजन सात्विक।
२. राजसिक पदार्थों का भोजन राजसिक।
३. तामसिक पदार्थों का भोजन तामसिक।

इसका वर्णन गीता में संक्षेप में भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है। भोजन के विषय में "आयु सत्वबला–रोग्येत्यादि।" ॥६४॥

शिखरिणीः—

अमानादम्भाघातनसहनतासत्सरलता,
गुरोः सेवा शौचाचलननिजनिघ्नस्त्रकरणम्।
अहंकाराभावो जनिमृतिरुजाक्लेशवगति-
र्नपुत्राद्यासक्तिर्हृदयसमता निष्टशुभयोः ॥ ६५ ॥

अन्वयः—स्पष्टोन्वयः

सं० टीका—अमानश्च, अदम्भश्च, अघातनश्च, सहनताच सती चासौ सरलता च गुरोः सेवा अहंकाराभावः गर्वाभावः, जनिश्च, मृतिश्च रुजाच क्लेशश्च जनिभृतिरुजाक्लेशाः तेषाम् अवगतिः ज्ञानम् यतः अवाप्योरुपसर्गयोः, इत्यकार लोपः। पुत्रादिषु आसक्तिर्न हृदय समता मनः साम्यम् अनिष्टशुभयोः शुभाशुभयोः

हिन्दी टीका—ज्ञान का लक्षण अभिमान का अभाव होना, दंभ न होना, हिंसा न करना। हिंसा—कायिक, वाचिक, मानसिक किसी प्रकार से किसी के चित्त को दुःख न पहुँचाने को अहिंसा कहते हैं। सहनशक्ति रखना, नम्रता रखना, गुरु की सेवा करना, स्थिरता रखना, पवित्रता रखना, अपने स्वाधीन आत्मा और इंद्रियों को रखना और गर्व का अभाव होना, जन्म, मरण, रोग क्लेशादि का ज्ञान होना, पुत्रादिकों में आसक्ति न होना, शुभाशुभ प्रसंग में चित्त समान रहना ही ज्ञान के लक्षण कहे गये हैं ॥ ६५ ॥

शिखरिणीः—

प्रगाढेशे भक्तिस्त्वितरविगतासक्तिरतुला
सदैकान्तेप्रीतिर्निनृसदसिरागो रुचिकरः।
सदाध्यात्मज्ञानं परपददतत्वार्थदृशता,
इदं प्रोक्तं ज्ञानं परमपुरुषेण प्रकटितम् ॥ ६६ ॥

अन्वयः—ईशे प्रगाढा भक्तिः, इतर विगता अतुला आसक्तिः, एकान्ते सदा प्रीतिः नृसदसि रागः रुचिकरः न, सदा, आध्यात्मज्ञानं परपदद-तत्वार्थ दृशता, इदम् परमपुरुषेण प्रकटितम् ज्ञानं प्रोक्तम्।

सं० टीका—ईशे परमेश्वरे प्रगाढ़ा दृढ़ाः भक्तिः इतरेषु विषयेषु विगताः निवृत्ताः, अतुला अतीव आसक्तिः यस्य, एकान्ते सदा प्रीतिः, नृसदसि जनसमूहे,

रागः अनुरागः रुचिकरः न, सदा आध्यात्मज्ञानं, सदा आत्मज्ञानं परं पदं विष्णुपदं ददाति इति परपददं यत् तत्वं तस्यार्थं, पश्यतीति दृशः (इगुपदेति कः) तस्य भावो दृशता दर्शनमित्यर्थः। इदम् परमपुरुषेण कृष्णेन प्रकटितं ज्ञानं प्रोक्तम्।

हिन्दी टीका—भगवान् में दृढ़ भक्ति होना, दूसरे विषयों में अत्यंत आसक्ति रहित हो जाना, एकान्त में प्रीति का रहना, मनुष्य समूह में प्रेम न होना, सर्वदा आत्मचिन्तन करना, परमपद को देनेवाला तत्व ज्ञान में दृष्टि रहना, यह ज्ञान भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है॥ ६६॥

इन्द्रवज्राः—

दूरं त्यजेत्काममचिन्तनेन,
क्रोधश्च कामस्य विवर्जनेन।
सर्वैनसां मूलमयं च लोभ-
मर्थंत्वनर्थाकगृहात्मकत्वात्॥ ६७॥

अन्वयः—अचिन्तनेन कामम्, दूरं त्यजेत्। कामस्य, विवर्जनेन क्रोधम् त्यजेत्। सर्वैनसां मूलमयं च लोभं त्यजेत् अनर्थाकगृहात्मकत्वात्, अर्थं त्यजेत्।

सं० टीका—अचिन्तनेन असंकल्पनेन, कामम् वांछाम् दूरं त्यजेत। कामस्य विवर्जनेन त्यागेन क्रोधम् त्यजेत्। सर्वैनसां सर्वेषां एनसां पापानाम् मूलत्वात् लोभंत्यजेत्, अनर्थाक गृहात्मकत्वात् अनर्थस्य अकस्य दुःखस्य च स्थानत्वात् अर्थं धनं त्यजेत्।

"अर्थानामर्जने दुःखम्, तथैव परिरक्षणे,
नाशे दुःखं व्यये दुखं धिगर्थं दुःखभाजनम्।"

इत्युक्तत्वात्। "लोभः पापस्य कारणम्" इति च कथितत्वात्। लोभस्य सर्वैनसां मूलमयत्वं सिध्यति।

हिन्दी टीका—मानसिक संकल्प न करने से काम को त्याग दे। काम को त्याग देने से क्रोध को त्याग दे। संपूर्ण पापों का कारण होने से लोभ को त्याग दे। अनर्थ एवं दुःख का स्थान होने से धन को त्याग दे ॥ ६७ ॥

इन्द्रवज्रा:—

अध्यात्मविद्यापरिशीलनेन,
शोकं च मोहं विसृजेद् विपश्चित् ।
दंभश्च मात्सर्यमदौ विजह्यात्,
सत्संगमाच्छीलवतां वुधानाम् ॥ ६८ ॥

अन्वयः—विपश्चित्, अध्यात्मविद्यापरिशीलनेन शोकं मोहं च विसृजेत् । सत्शीलवतां बुधानाम् संगमात्, दंभं, मात्सर्यमदौ च विजह्यात् ।

सं० टीका—विद्वान् आध्यात्मिक ज्ञानविचारेण शोकमोहौ त्यजेत्, शीलवतां सदाचारवतां विदुषां संगमात् सत्संगेन । दंभम् परप्रतारणाद्यर्धम् तप आदिकं मात्सर्यं ईर्षाम् च, मदम् गर्वम् च त्यजेत् ।

हिन्दी टीका—आध्यात्मिक ज्ञान के विचार से शोक और मोह का त्याग करे। सदाचारी विद्वानों के संग से दंभ, पाखंड, ईर्षा और गर्व का त्याग करे ॥ ६८ ॥

शार्दूलविक्रीडितम्:—

ये संसारजिगीषवः सुमनसो निःश्रेयसाकांक्षिणः,
स्ते त्यक्त्वा फलकामनां भवकरीं कुर्वन्ति कर्माखिलम् ।
यद्वाग्देहमनःकृतं भगवते कर्मार्पणं कुर्वते,
ते यान्ति प्रथितप्रतापविभवं गोविन्दलोकं ध्रुवम् ॥ ६९ ॥

अन्वयः—ये संसारजिगीषवः सुमनसः, निःश्रेयसाकांक्षिणः सन्ति, ते भवकरीं फलकामनां त्यक्त्वा, अखिलं कर्म कुर्वन्ति। यद् वाग्देहमनः-कृतं कर्म भगवते अर्पणं कुर्वते, ते प्रथितप्रतापविभवं गोविन्द लोकं ध्रुवं यान्ति।

सं० टीका—जेतुमिच्छवः जिगीषवः संसारस्य जिगीषवः संसार जिगीषवः संसारं जेतुं इच्छवः सुष्ठु मनो येषां ते सुमनसः सुहृदयाः, निःश्रेयसं मोक्षं आकांक्षंते इति निःश्रेयसाकांक्षिणः मोक्षार्थिनः, ते भवकरीं संसारप्रदाम्, फल-कामनाम् फलाभिलाषम्, त्यक्त्वा, अखिलं सर्वं कर्म कुर्वन्ति। यत् वाक् च देहश्च, मनश्च वाग्देहमनांसि तैः कृतं यत् कर्म तत् भगवते ईशाय अर्पणं कुर्वते। ते प्रथितः प्रसिद्धः प्रतापः प्रभावो, विभव ऐश्वर्यञ्च यस्य तं गोविन्दलोकं ध्रुवं यान्ति गच्छन्ति।

हिन्दी टीका—जो संसार जीतना चाहते हैं ऐसे सुन्दर हृदय वाले मोक्षार्थी जन संसार को देने वाली फल कामना को त्याग कर संपूर्ण कार्य करते हैं। वाणी, देह, मन इन सबसे किया गया कर्म भगवान् को अर्पण कर देते हैं। वे जिसका प्रताप और वैभव प्रसिद्ध है ऐसे वैकुण्ठ लोक को जाते हैं॥ ६९॥

भुजंगप्रयातम्:—

इयं नुर्जनिः कर्मकुः क्षेत्रतुल्यो-
ह्युद्भवन्तीह कर्माणि शष्पोपमानि।
न जात्वन्तमायान्ति कर्मेह याव-
ज्जनिष्तल्लयायेशनिघ्नानि मुञ्च ॥ ७० ॥

अन्वयः—इयं नुर्जनिः क्षेत्रतुल्या कर्मकुः इह शष्पोपमानि कर्माणि उद्-भवन्ति जातु अन्तम् न आयान्ति। यावत् कर्म भवेत् इति शेषः। तावत् जनिः तल्लयाय ईश निघ्नानि मुञ्च।

सं० टीका—इयं नुर्जनिः नर जन्म, क्षेत्र तुल्यं धान्य क्षेत्र सदृशं कर्मणां कुः कर्मभूमि इह, अस्याम् शष्पोपमानि कोमलतृणसदृशानि बहूनि इत्यर्थः। कर्माणि शुभाऽशुभानि उद्भवन्ति प्रादुर्भवन्ति तानि कर्माणि जातु कदाचित् अपि अन्तं नाशं न आयान्ति न प्राप्नुवन्ति न व्यतियन्ति इत्यर्थः। यावत् कर्म तावत् इह अस्मिन् संसारे जनिर्जन्म भवति तल्लयाय तेषां कर्मणां लयाय नाशाय ईशस्य परमेश्वरस्य निघ्नानि अधीनानि मुञ्च कुरु। कर्मनाशार्थं सर्वं कर्म ईश्वरार्पणम् विधेहि। ईश्वरार्पितकर्माणि भर्जितधानावत् न प्रादुर्भवन्ति। गोत्राकुः पृथिवी पृथ्वी इत्यमरः। शष्पं बालतृणं घासः इत्यमरः।

हिन्दी टीका—यह मनुष्य जन्म धान्य क्षेत्र के तुल्य कर्म भूमि है। इसमें छोटे-छोटे बहुत से घास के तुल्य कर्म उत्पन्न होते हैं। वे कभी भी नष्ट नहीं होते। जब तक कर्म अवशिष्ट (शेष) रहता है तब तक इस संसार में जन्म होता है। अतः उन सब कर्मों को भगवान् के अर्पण कर दो।

स्पष्टीकरणः—भगवान् के अर्पण किये हुए कर्म भर्जित धानावत् (भूंजे हुए धान के समान) फिर नहीं उगते हैं। वे नष्ट हो जाते हैं। जिससे फिर संसार में जन्म नहीं होता ॥ ७ ॥

उपजातिः—

रोम्णः शतांशस्य शतांशभाऽगो,
ग्रस्याति सूक्ष्मः कथितोहि जीवः।
अजोऽमृतोनन्तगुणोंशभूतः
क्षेत्रज्ञ आनंदसुबोधयुक्तः ॥ ७१ ॥

अन्वयः—रोम्णः अग्रभागस्य अतिसूक्ष्मः शतांशस्य शतांशभागः जीवः कथितः। हि इति निश्चयेन स च अजः अमृतः अनंतगुणाः अंशभूत क्षेत्रज्ञ आनंदसुबोधयुक्तः।

सं० टीका—रोम्णः केशस्य अग्रभागस्य पुरोभागस्य अतिसूक्ष्मः अत्यणुः शतांशस्य शतांशभागः शतसंख्याकभागस्य शततमो भागः। जीवः तत्पद-वाच्यः कथितः उक्तः पंडितैः इति शेषः। सच जीवः अजः अजन्मा अमृतः मरण-धर्म रहितः अनंतगुणः सर्वगुणसम्पन्नः अंशभूतः परमेश्वरस्य अंशः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रवित् आनंदसुबोधयुक्तः सदानंद सद्ज्ञानसहितः ॥

हिन्दी टीका—बाल के अग्रभाग के सौवें हिस्से का सौवां हिस्सा अत्यन्त सूक्ष्म जीव का स्वरूप कहा है। वह अजन्मा मरणधर्मरहित अनंतगुणयुक्त भगवदंश क्षेत्र शरीर को जाननेवाला आनंद ज्ञानादि सम्पन्न है॥ ७१ ॥

दोधक—

इन्द्रियकर्मविहीनसुषुप्ते,
देहधने श्रुतद्रष्टनिदानात्।
स्वप्नमथानु भवत्यखिलं यः,
सूक्ष्मशरीरगतः स हि जीवः ॥७२॥

अन्वयः—इन्द्रियकर्मविहीनसुषुप्ते देहधने सति श्रुतद्रष्टनिदानात् स्वप्नं अखिलं यः सूक्ष्मशरीरगतः सन् अनुभवति सः जीवः।

सं० टीका—इन्द्रियाणि करणानि कर्मभिर्विहीनानि क्रियारहितानि अतएव सुषुप्तानि यस्मिन् तस्मिन् देह एव धनं तस्मिन् देहधने शरीरद्रविणे सति श्रुत-द्रष्टनिदानात् श्रुतं च द्रष्टं च त एव निदानं तस्मात् यत् स्वप्नमयं सूक्ष्मशरीरगतः सन् अणुदेहस्थितः अखिलं सर्वम् अनुभवति येन अनुभूयते सः जीवः!

हिन्दी टीका—जब सर्व इन्द्रियों के कर्मशून्य होने से सोये हुए मृतक के तुल्य शरीर के होने पर सुने हुए और देखे हुए के कारण उत्पन्न स्वप्न को जीव सूक्ष्म देह में स्थित होकर सबका अनुभव करता है। वह जीव है॥ ७२॥

आर्या:—

दशसंख्यककरणानि च हृदयं जीवश्च पञ्चतन्मात्राः ।
सप्तदशात्मकदेहो लिङ्गाख्यः पंडितैरुक्तः ॥ ७३ ॥

अन्वयः—दस संख्यककरणानि च हृदयं जीवश्च पञ्च तन्मात्राः सप्तदशात्मक देहः पंडितै लिङ्गाख्यः उक्तः ।

सं० टीका—दशसंख्यककरणानि च पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि इति मिलित्वा दशेन्द्रियाणि हृदयं मनः जीवः पञ्च तन्मात्ररूपाद्याः एवं मिलित्वा सप्तदशात्मकदेहः लिङ्गनामकः पंडितैः विद्वद्भिरुक्तः कथितः ।

हिन्दी टीका—दस इन्द्रियां (पाँच कर्मन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेद्रियाँ) सूक्ष्मरूप मन और जीवात्मा रूप रसादि पञ्च तन्मात्रा जो पंच भूत के कारण उत्पत्ति करने वाले हैं इन सत्रह वस्तुओं का संग्रह लिंग देह बनता है उसको पंडित लोग सूक्ष्म देह भी कहते हैं। जीवात्मा इसी में रहता है। जब तक इसका नाश न हो जीवात्मा की मुक्ति नहीं होती ॥ ७३ ॥

दोधकः—

आकृतिहीनसमेश्वरपक्षेयं कथितः कृतिभिर्ननु जीवः ।
देहमृते स्थितिमेतुमशक्तो दाहमिते समुपैति च मुक्तिम् ॥७४॥

अन्वयः—आकृतिहीनसमेश्वरपक्षे । अयं कृतिभिः अयं ननु निश्चयेन जीवः कथितः । देहं ऋते स्थितिम् एतुम् अशक्तः दाहम् इते च मुक्तिम् समुपैति ।

सं० टीका:—आकृतिहीन समेश्वर पक्षे आकृत्या आकारेण हीनः रहितः समेषां सर्वेषां ईश्वरः परमेश्वरः तस्य पक्षे परमेश्वरः साकारो निराकारश्च साकारात् तु सर्वेषां अवतारादीनाम् उत्पत्तिः । निराकारपक्षे ममैवांशो जीवलोक इति कथं घटेत आकाराभावात् अंशाभावः । अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात् स जीवो यत् पुनर्भवः

इति भागवतवचनात् । यस्मात् लिंगदेहात् पुनः भव उत्पत्तिः सः लिङ्ग देहो जीव इति कथितः । ननु लिङ्गात् पृथक् कथं जीवो न अंगी क्रियते तत्राह देहमृते लिङ्गदेहम् विना स्थितिम् एतुं गन्तुम् अशक्त असमर्थः ननु लिङ्गदेहे भस्मतां गते जीवः कथं पृथक् तिष्ठेत् तत्राह दाहं इते गते सति मुक्ति समुपैति प्राप्नोति ब्रह्मणि लीयत इत्यर्थः ।

हिन्दी टीका—ब्रह्म साकार और निराकार भेद से दो प्रकार का है । यद्यपि वैष्णवों के मत में निराकार ब्रह्म नहीं है । परन्तु भागवतादि में तो दोनों प्रकार का माना है । जब ब्रह्म को निराकार मानते हैं । तब उसके कर चरणादि अवयव न होने से उसका अंश (अवयव) नहीं हो सकता । तब "ममैवांशो जीवलोके" इस गीता के अनुसार जीव को ब्रह्म का अंश माना है । तब अवयव के अभाव से अंश कैसे हो सकता है । इस पक्ष में भागवत में "स जीवो यत्पुनर्भवः" इस वचन से जिस लिंग देह से बार-बार जीव का जन्म होता है । वह लिंग देह ही जीव माना गया है । साकार ब्रह्म से जितने अवतार आदि हैं उन सब की उत्पत्ति होती है । निराकार तो क्रियाशून्य विकार रहित है ॥ ७४ ॥

भुजंगप्रयातम्:—

न यावत् विसर्गो भवेदस्य तावन्न
निर्वाणमेति भ्रमन्नेष जीवः ।
यतोऽस्यास्ति भूयो भवोऽस्मिन् भवेऽज-
प्रसादो यदा स्यात् तदास्मात् विमुक्तिः ॥ ७५ ॥

अन्वयः—यावत् अस्य विसर्गो न भवेत् तावत् एष जीवः भ्रमन् निर्वाणं न एति यतः यस्मात् अस्य भूयः भवे भवः अस्ति अजप्रसादः यदा स्यात् तदा अस्माद् विमुक्तिः ।

सं० टीका—यावत्कालपर्यन्तम् अस्य लिङ्गदेहस्य विसर्गः त्यागो न भवेत् तावत् संसारे भ्रमन् पर्यटन् एष जीवो निर्वाणं शान्ति न एति न प्राप्नोति। यतः यस्मात् लिंगदेहात् अस्य जीवस्य भवे संसारे भूयः पुनः पुनः भवः जन्म अस्ति भवति।

यदा अजप्रसादः परमेश्वरकृपा भवेत् तदा अस्माद् लिंगदेहात् विमुक्तिः विमोचनं भवेत्।

हिन्दी टीका—जब तक इस लिंग देह सूक्ष्मशरीर का त्याग नहीं होता तब तक यह जीव संसार में भटकता हुआ शान्ति को प्राप्त नहीं होता। क्योंकि इस लिंग देह से ही जीव का संसार में बार-बार जन्म होता है। जब परमेश्वर की कृपा होती है। तब लिंग देह से छुटकारा पाता है ॥७५॥

मालिनी—

प्रकृतिरचितकर्माण्यात्मकृत्यानि जानन्,
मदपरिगतमोहात् कर्तृभावं प्रपन्नः।
तदनृतनिजकर्तृत्वाभिमानाद् भवेऽस्मिन्,
विगतसकलदोषोऽप्येति भूयश्च जीवः ॥७६॥

अन्वयः—जीवः प्रकृतिरचितकर्माणि आत्मकृत्यानि जानन् मद परिगत-मोहात् कर्तृभावं प्रपन्नः विगतसकलदोषोऽपि तदनृतनिजकर्तृत्वाभिमानात् अस्मिन् भवे भूयश्च अपि ऐति।

सं० टीका—जीवाः, प्रकृत्या मायया, रचितानि निर्मितानि, कर्माणि आत्मना स्वेन, कृत्यानि, जानन् मानयन्, मदेन गर्वेण परिगत,ः सर्वतोव्याप्तः यो मोहः अज्ञानं तस्माद् कर्तृभावं कर्तृत्वं प्राप्तः, विगताः, रहिताः सकलाः अशेषाः दोषाः दूषणानि यस्य अर्थात् निर्दोषोऽपीत्यर्थः तस्य अनृतस्य, निजस्य स्वकीयस्य कर्तृत्वाभिमानः कर्तृत्वाहंकारः तस्मात् कारणात् अस्मिन् भवे संसारे भूयश्च पुनःपुनः ऐति प्राप्नोति।

हिन्दी टीका—जीवात्मा प्रकृति के किए हुए कामों को अपने रचे हुए मानता हुआ अहंकार से प्राप्त अज्ञान से कर्ता बन बैठा है। उस झूठे उसके कर्तापन के गर्व से निर्दोष होते हुए भी यह जीव बार-बार संसार में जन्म लेता है। जैसे-चोरी कोई दूसरा पुरुष करता है और कोई दूसरा पुरुष कबूल करता है कि मैंने चोरी की है सब उस निर्दोषी पुरुष को कबूल करने पर सजा होती है वैसे ही झूठे अंहकार के कारण इस जीव को संसार में बार-बार जन्म लेना पड़ता है ॥७६॥

भुजंगप्रयातम् :—

यदोन्मूलिताशेषकर्मा हि जीवो-
विमुक्ते तनुत्यागमाप्नोतिवायः ।
विमुच्यानुदेहं तदेशस्वरूपो-
भवेत् तन्मयः सर्वदानन्दयुक्तः ॥७७॥

अन्वयः—यः जीवः यदा उन्मूलिताशेषकर्मा वा अविमुक्ते तनुत्यागं आप्नोति। सः अणुदेहं विमुच्य तदा ईशस्वरूपः सर्वदानंदयुक्तः तन्मयो भवेत्।

सं० टीका—यः जीवः यदा यस्मिन् समये उन्मूलितानि अशेषाणि समस्त-कर्माणि शुभाऽशुभानि यस्य सः वा अविमुक्ते काश्यां यदा तनुत्यागं शरीर-विसर्जनम् आप्नोति प्राप्नोति तदा अणुदेहं लिंगशरीरं विमुच्य त्यक्त्वा ईशे स्वरूपं यस्य सः सर्वदानन्दयुक्तः तन्मयः तदाकारो भवेत्।

हिन्दी टीका—जब जीव के सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं अर्थात् ज्ञानाग्नि से भस्म हो जाते हैं अथवा ईश्वर के अर्पण कर देने से क्षीण हो जाते हैं अथवा काशी में शरीर त्याग करता है। तब वह जीव लिंग देह को त्याग कर आनंदयुक्त ब्रह्ममय हो जाता है ॥७७॥

पृथिवीवृत्तम् :—

नरो गृहविनिर्गतोऽटति सुखं यथेतस्ततः,
पुनर्जिगमिषुर्गृहं सुखनिकेतमेत्यालयम् ।
तथा हरिविनिर्गतोऽवयव एष जीवो भ्रमन्,
पुरीषु सुखमेति नो पिपटिषुर्हरिं स्वालयम् ॥७८॥

अन्वयः—गृहविनिर्गतः 'नरो यथा सुखं इतस्ततः अटति पुनः गृहं जिगमिषुः सुखनिकेतमालयमेति तथा हरिविनिर्गत एष अवयवः जीवः स्वालयं हरिं पिपटिषु पुरीषु भ्रमन् सुखं नो एति ।

सं० टीका—गृहात् विनिर्गतः बहिर्गतः, नरो मनुष्यः इतस्ततः स्वेच्छानुसारं यथासुखम् अटति भ्रमति, पुनः गृहं जिगमिषुः गन्तुं इच्छुः यतः सुखनिकेतनं सुखस्थानम् । तथैव हरेः परमेश्वरात् विनिर्गतः बहिर्गतः, हरेरेव अवयवः एष जीवः स्वालयम् स्वस्थानम्, हरिम् भगवन्तम्, पिपटिषु पटितुमिच्छुः गन्तुमिच्छुः इत्यर्थः; अटपट गतौ, पुरीषु नानायोनिषु, भ्रमन् गच्छन्, क्वापि सुखं शान्तिम् नो ऐति न प्राप्नोति ।

हिन्दी टीका—जैसे कोई मनुष्य घर से निकलकर यथेष्ट (इच्छानुसार) इधर-उधर घूमता है । परन्तु पीछे लौटने की इच्छा करता है, इच्छा रखता है । क्योंकि घर को ही सुख का स्थान देखता है । उसी प्रकार भगवान् के शरीर में से निकले हुए सम्पूर्ण जीव नाना-प्रकार की योनियों में भ्रमण करते हुए भी पीछे (पुनः) भगवान् को प्राप्त करने की इच्छा वाला कहीं भी सुख नहीं पाता है ॥ ७८ ॥

शार्दूलविक्रीडितम् :—

मातुर्गर्भगतोऽतिदुःखितवपुस्तुष्टाव योऽजं पुरा,
मोक्षार्थं प्रयतिष्य आशु नपुनर्यायान्नगर्भे यथा ।

हे नाथ ! त्वरितं बहि क्षिप महादुःखात्पुरीषालयात्,
क्षिप्तश्चेह विलोक्य भोगविपणिं गर्भोदितं व्यस्मरत् ।।७६।।

अन्वयः—मातुर्गर्भगतः अति दुःखितवपुः यः जीवः पुरा अजं तुष्टाव हे नाथ ! त्वरितं महादुःखात् पुरीषालयात् बहिः क्षिप अहं पुनर्गर्भं यथा न यायाथा मोक्षार्थं प्रयतिष्य आशु क्षिप्रम् । इह क्षिप्तः भोगविपणिं विलोक्य गर्भोदितं व्यस्मरत् ।

सं० टीका—मातुः जनन्याः, गर्भगतः जठरं प्राप्तः अतिदुःखितो जीवो हरिं तुष्टाव हे नाथ । त्वरितं शीघ्रम्, अस्मात्, महादुखात्, शौचस्थानात्, बहिःक्षिप बहिर्निस्सारय । अहं पुनर्गर्भे यथा न यायाम् आगमिष्यामि तथा मोक्षार्थं प्रयतिष्ये प्रयत्नं करिष्यामि । बहिक्षिप्तस्य बहिक्षिप्तः सन् इह संसारे भोगविपणिं विषयापणं विलोक्य दृष्ट्वा, गर्भे उदितं व्यस्मरत्- विसस्मार ।

हिन्दी टीका—माता के गर्भ में प्राप्त जीवात्मा अत्यंत दुःखित होकर भगवान् से प्रार्थना करता है कि हे नाथ ! इस महादुःख पुरीष-स्थान से शीघ्र बाहर निकालिये । मैं मोक्ष के लिये ऐसा प्रयत्न करूँगा कि पुनः माता के गर्भ में न आऊँ । गर्भ से बाहर आकर संसार के भोग को देखकर गर्भ की प्रतिज्ञा भूल गया । गर्भ में किए हुए वादे को सांसारिक चक्कर में फंसकर भूल गया ।। ७९ ।।

शार्दूलविक्रीडितम्—

हृन्नीडस्थितयोर्द्वयोर्विहगयोर्मैत्रीं मिथः प्राप्तयोः,
रेकः पिप्पलमन्नमत्तुमटितोऽजाधीनतामाव्रजत् ।
अश्नन् भोगमनेकधा स्वसुहृदस्मृत्या नु बद्धस्तया,
दुखार्तोऽस्मरदात्ममित्रमभवन् मुक्तस्तदा बंधनात् ।।८०।।

अन्वयः—हृन्नीडास्थितयोर्मिथो मैत्रीम् प्राप्तयोः, द्वयोः विहगयोः एकः पिप्पलं अन्नं अत्तुम् अटितः सन् अजाधीनताम् आव्रजत्, अनेकधा भोगमश्नन्

स्वसुहृदः अस्मृत्या तथा बद्धः नु दुःखार्तः आत्ममित्रं अस्मरत् तदा बंधनान्मुक्तः अभवत् ।

सं० टीका—द्वौ सुपर्णौ सयुजौ सखायौ इति श्रुते रभिप्रायं दर्शयति । हृदेव नीडं पक्षिनिवासगृहं तत्र स्थितयोः निवसतोः मित्रयोः परस्परं, मैत्रीं मित्रताम् प्राप्तयोः द्वयोः विहगयोः पक्षिणोः, एकः पिप्पलं विषयरूपं अन्नं अत्तुं भक्षितुं, अटितः प्रचलितः सन्, अजायाः मायायाः अधीनतां आयत्तताम्, आव्रजत प्राप, तदा अनेकधा नानाविधं, भोगं विषयं अश्नन् आस्वादयन्, स्वस्य सुहृदः परमेश्वरस्य अस्मृत्या विस्मरणेन तया मायया बद्धः तर्हि, दुःखार्तो दुःखपीडितो आत्ममित्रं स्वसुहृदं परमेश्वरं अस्मरत् सस्मार, तदा बंधनान् मुक्तः मुमुचे ।

हिन्दी टीका—हृदयरूपी घोंसले में रहते हुए परस्पर दोनों मित्र [(१) जीवात्मा (२) परमात्मा] दोनों पक्षियों में से एक जीवात्मा विषयरूपी अन्न को खाने के लिये अर्थात् विषय भोग के लिये वहाँ से चला । तो माया के आधीन होगया और नाना प्रकार के भोगों को भोगता हुआ अपने उस मित्र परमेश्वर के भूल जाने से माया ने उसको जकड़ कर बाँध लिया । तब बंधन से अत्यन्त दुःखित होकर उसने अपने मित्र भगवान् का स्मरण किया । तब उसी समय बंधन से मुक्त होगया । अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा हृदय में निवास करते हैं । उसमें जीवात्मा विषयभोग के लिये यहाँ आकर माया में फँस गया और भगवान् को भूल गया भगवान् को याद करने पर बंधन से विमुक्त हो जाता है ॥ ८० ॥

इति ज्ञानप्रकरणम्

अथ वैराग्य प्रकरणम्—

मालिनी वृत्तम्—

विशतु तव पदाब्जेऽद्यैव मे मानसालि-
र्विषयकुसुमभोगं संपरित्यज्य कृष्ण ।

तनुविशरणकाले श्लेष्मवातोष्मरुद्धे,
स्मरणमघटितंस्यात्तावकं कंठदेशे ॥ ८१ ॥

अन्वयः—हे कृष्ण! तव पदाब्जे, मे मानसालिः, विषयकुसुमभोगं संपरित्यज्य अद्यैव विशतु, तनु विशरण कालेश्लेष्म वातोष्म रुद्धे कण्ठदेशे तावकं, स्मरणम् अघटितम् स्यात्।

सं० टीकाः—हे कृष्ण! "कृषिर्भू वाचकः शब्दः णश्च निर्वृति वाचकः तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।" इति वैष्णवनिबंधवचनात्। हे सदानंद! तवपदाब्जे तवचरणकमले, मे मम मांनसालिः मानसं चित्तमेव अलि-र्भ्रमरः। विषयकुसुमभोगम् विषयरूपपुष्पसंभोगम् त्यक्त्वा, अद्यैव विशतु प्रवि-शतु। तनोः विशरणस्य पंचत्वस्य काले समये श्लेष्म वातोष्मरुद्धे श्लेष्मा च वातश्च ऊष्मा च तैः रुद्धे निंरुद्धे कण्ठदेशे प्रदेशे तावकं तव इदं तावकं, स्मरणं अघटितं स्यात्।

हिन्दी टीका—हे कृष्ण सदानंद! आपके चरण कमल में मेरा मन रूपी भ्रमर (भौंरा) आज ही प्रवेश कर जाय। क्योंकि शरीर त्याग के समय में कण्ठ वात्त, पित्त और कफ से रुक जाने से आपका स्मरण होना असंभव होगा ॥८१॥

भुजंगप्रयातम् :—

श्रवोमूलदेशे जरा कालकन्या,
ब्रवीत्येत्य लोकाः समाकर्णयन्तु।
स्पृहामन्यभार्यार्थजामाशु मुक्त्वा,
श्रयंत्वङ्घ्रिपद्मं ह्यजस्रं मुरारेः ॥८२॥

अन्वयः—काल कन्या जरा, एत्य श्रवोमूल देशे, ब्रवोति हे लोकाः, भवन्तः समाकर्णयन्तु। किमिति, अन्य भार्यार्थजां स्पृहां आशुमुक्त्वा, अजस्रं मुरारेः अङ्घ्रिपद्मम् श्रयन्तु।

सं॰ टीका—गैर्वाण्यामनुवादः-कालस्य मृत्योः कन्या जरा नाम्नी एत्य आगत्य, श्रवसः कर्णस्य, मूलदेशे मूलप्रदेशे, ब्रवीति । हे लोकाः भवन्तः एतत् समाकर्णयन्तु । किंतर्हि अन्येषां जनानां भार्या च अर्थश्च तयोः जायमानां स्पृहां तृष्णाम्, आशु शीघ्रम् मुक्त्वा त्यक्त्वा, अजस्रम् निरन्तरम्, मुरारेः कृष्णस्य अङ्घ्रिपद्मम् चरणकमलम् श्रयन्तु आश्रयन्तु ।

हिन्दी टीका—जरा नामक काल कन्या आकर कर्ण के मूल प्रदेश में कहती है कि हे लोगों सुनो! दूसरों की स्त्री और धन में जो तृष्णा है उसको शीघ्र त्याग कर निरन्तर भगवान् के चरण कमल का आश्रय लो ॥८२॥

हरिणीवृत्तम्—

विषयविषजा तृष्णा घोरा पिशाचवधूनिभा,
विलयपदवीमात्मानन्दं मुमुक्षुभिरावृतम् ।
नयति लघु तां मिथ्याभाषां विवेकिविवर्जिताम्,
त्यजत भजत श्रेयःप्राप्त्यै बुधा हरिमादरात् ॥८३॥

अन्वयः—विषयविषजा घोरा, पिशाचवधूनिभा तृष्णा, मुमुक्षुभिरावृतम्, आत्मानन्दम्, विलयपदवीम्, नयति । मिथ्याभाषां विवेकिविवर्जितां ताम् लघु त्यजत । श्रेयः प्राप्त्यै हे बुधाः आदरात् हरिम् भजत ।

सं॰ टीका—विषयः भोग एव विषं तस्माज्जाता विषयविषजा, घोरा भयप्रदा, पिशाचवधूनिभा पिशाचभार्यासदृशी, तृष्णा कामना, मुमुक्षुभिः मोक्षमिच्छुभिः, ज्ञानिभिः, आवृतम्, स्वीकृतम्, आत्मानन्दम्, विलयस्य नाशस्य पदवीमार्गं नयति प्रापयति । मिथ्या आभासो यस्यास्तां मिथ्या प्रतीयमानां, विवेकिभिः ज्ञानिभिः, विवर्जिताम् त्यक्ताम् तां तृष्णां लघु शीघ्रम् त्यजत मुञ्चत । श्रेयसः मोक्षस्य प्राप्त्यै, आदरात् हे बुधाः हरिं भजत ।

हिन्दी टीका—विषयरूपी विष से उत्पन्न होनेवाली भयंकर पिशाचिनी के समान तृष्णा मुमुक्षु लोगों से स्वीकार किए हुए आत्मा-

नंद को नष्ट करती है। ऐसी मिथ्या विवेकिजन वर्जित तृष्णा को शीघ्र ही त्याग दो। और मोक्ष प्राप्ति के लिये हे विद्वानो! आदर से भगवान् का भजन करो ॥८३॥

शार्दूलविक्रीडितम् वृत्तम्—

द्रव्यं नीरतरंगसन्निभमिमे पुत्रादिकाः स्वार्थिनो,
देहं लालयसे यमात्मवदसौ मृत्पात्रवन्नश्वरः।
यद्दृश्यं तदसत्यमेतदखिलं मत्वात्मसौख्यप्रदम्,
सत्यानंदमयं हरिं स्मर सखे! संसारसिन्धुं तर ॥८४॥

अन्वयः— हे सखे! द्रव्यं नीरतरंगसन्निभम्, इमे पुत्रादिकाः स्वार्थिनः यं देहं आत्मवत्, लालयसे, असौ मृत्पात्रवत् नश्वरः। यद् दृश्यं, एतत् अखिलं, असत्यं, मत्वा, आत्मसौख्यप्रदम्, सत्यानंदमयम् हरिं स्मर संसारसिन्धुं च तर।

सं० टीका—द्रव्यं धनादिकं जलतरंगतुल्यम्, इमे पुत्रादिकाः स्वार्थवन्तः, यं देहं, आत्मवत् आत्मतुल्यं लालयसे प्रीतिं करोषि, असौ देहः मृत्पात्रवत् मृण्मयभाजनवत्, नश्वरः क्षणिकः। यद्दृश्यम् यद्दृश्यमानम्, एतत् अखिलं, असत्यं मत्वा, आत्मसौख्यप्रदम् आत्मसुखकरं, सत्यानंदमयम् सत्यं आनंदस्वरूपं, हरिं स्मर संसारसिन्धुं च तर।

हिन्दी टीका—यह धनादिक जल तरंग के सदृश (समान) हैं। पुत्रादिक सब स्वार्थी हैं। जिस देह को आत्मा के तुल्य प्यार करते हैं यह मिट्टी के पात्र के समान नश्वर (नाशवान्) है। अतः जो कुछ दिखलाई देता वह सभी नाशवान् है ऐसा समझकर सत्य एवं आनंद स्वरूप आत्मा को सुख देने वाले हरि का स्मरण करो और संसार को पार करो ॥ ८४ ॥

द्रुतविलम्बितम्—

जगदवेक्षितमेतदशेषतो भयविवर्जितमस्ति न किञ्चन ।
इति विचिन्त्य सुबुद्धिभिराश्रितं भगवतः पदमेव हि निर्भयम् ॥८५॥

अन्वयः—एतत्, जगत्, अशेषतः, अवेक्षितम्, किञ्चन, भयविवर्जितम् नास्ति । इति विचिन्त्य, सुबुद्धिभिः भगवतः पदमेव आश्रितम्, हि ।

सं० टीका—एतत् दृश्यमानम्, जगत् विश्वम्, अशेषतः सर्वम्, अवेक्षितम् अवलोकितम्, किञ्चन किमपि भयविवर्जितम् भयरहितम् न अस्ति । इति एवं विचिन्त्य विचार्य, सुबुद्धिभिः, ज्ञानिभिः निर्भयम् भयरहितम्, भगवतः परमेश्वरस्य पदमेव, आश्रितम् ।

हिन्दी टीका—दृश्यमान (दिखलाई देने वाले) सम्पूर्ण जगत् को देखा । तो भय रहित (बिना) कुछ नहीं दिखलाई दिया । यह विचार कर ही ज्ञानियों ने निर्भय भगवान् के पद का आश्रय लिया ॥ ८५ ॥

आर्यावृत्तम्:—

सम्पदसम्पदभेदो दरदुःखप्रदसहायगम्याभ्याम् ।
किमिव नु सम्पदि तन्नो विपदामिव राति या नाकम् ॥ ८६ ॥

अन्वयः—सम्पदसम्पदभेदः, दरदुःखप्रदसहाय गम्याभ्याम् सम्पदि किमिव नु, तत, नो, या विपदामिव, नाकम् राति ।

सं० टी०—सम्पत् च असम्पत् च सम्पदसम्पदौ तयोरभेदः, सम्पदसम्पदभेदः, सम्पदसम्पदोः सम्पत्तिविपत्योः अभेदः, भेदाभावः । कस्मात् कारणात् तर्हि दरदुःखप्रदसहायगम्याभ्याम् हेतुभ्याम्, दरंभयं दुःखं च प्रददासि इति च दरदुःखप्रदे, सहायेन गम्ये सहायगम्ये । दरदुःखप्रदे च सहायगम्ये च ताभ्याम् दरदुःखप्रदसहायगम्याभ्याम् । सम्पदपि भय दुःखप्रदा तथैव विपदापिभयदुःखप्रदा । सम्पदपि सहायगम्या, विपदपि तथैव । सम्पदि

किमिव नु तत् नो नास्ति या विपदामिव विपत्तीनामिव अकम् दुःखम् न राति न ददाति ।

हिन्दी टीका—सम्पत्ति और असम्पत्ति में कोई भेद नहीं हैं। क्योंकि दोनों भय को देने वाली हैं। दोनों सहाय गम्य (सहायक से प्राप्त) हैं। अतः सम्पति में ऐसा क्या नहीं है जो विपत्ति के समान दुःख को नहीं देती ॥८६॥

वँशस्थवृत्तम्—

वधूसुतस्वावनिहर्म्यभूषणा-
म्बरस्वदेहाकृतिमित्रबान्धवाः ।
परं नु लोकं गमितेऽमलात्मनि,
निमीलितेऽक्षण्यखिला वृथा हि ते ॥८७॥

अन्वयः—वधूसुतस्वावनिहर्म्यभूषणाम्बर, स्वदेहाकृतिमित्र, बान्धवाः, परं नु लोकं गमिते, अमलात्मनि लोकम् इते, अक्षणि निमीलिते, ते, अखिला वृथा हि ।

सं० टीका—वधूश्च सुतश्च स्वंच, अवनिश्च हर्म्यञ्च, भूषणानि च; अम्बराणि च, स्वदेहश्च, आकृतिश्च मित्राणिच, बांधवाश्च एतेषां द्वन्द्वः अमलात्मनि शुद्धस्वरूपेजीवे, परलोकम्, इते गते सति, अक्षणि नेत्रे, निमीलिते सति, अखिलाः ते पूर्वोक्ताः वृथैव ।

हिन्दी टीका—स्त्री, धन, पुत्र, पृथ्वी, मकान, आभूषण, वस्त्र, अपना शरीर, अपनारूप, मित्र बांधव (भाई-वन्धु) ये सब व्यर्थ हैं। कोई भी साथ नहीं जाते हैं। इस निर्मल आत्मा के परलोक चले जाने पर और आँख मिच जाने पर ये सब यहीं रह जाते हैं ॥८७॥

इति वैराग्यप्रकरणम्

नीतिप्रकरणम्

शार्दूलविक्रीडितम्—

पूज्यानां परिचर्ययाखिलसुखं संप्राप्यते मानवैः,
श्रीरागच्छति सुप्रसन्नहृदया सद्वृत्तसेवारतम् ।
पूज्यास्ते सुहृदः समस्तजगतः शान्तस्वभावामल-
स्वान्ता दुःखित दुःखदर्शनमहादुःखानिवृत्त्युद्यताः ॥ ८८ ॥

अन्वयः—पूज्यानां परिचर्यया, मानवैः, अखिलसुखं प्राप्यते, सद्वृत्त-सेवारतम्, सुप्रसन्नहृदया, श्रीः, आगच्छति । ते पूज्याः भवन्ति, ये समस्त जगतः, सुहृदः । शान्तस्वभावामलस्वान्ता, दुःखितदुःखदर्शनमहा दुःखाः, निवृत्त्युद्यताः ।

सं० टीका—पूज्यानां महात्मनां, परिचर्यया, सेवया, मानवैः, अखिलसुखं सर्वं सुखम्, प्राप्यते । सद्वृत्तसेवारतम्, सदाचारिणं सेवातत्परं च, सुप्रसन्न हृदया प्रसन्नचित्ता श्रीर्लक्ष्मीरागच्छति । ते पूजयितुं योग्या भवन्ति । ये सर्व-जगतः, सुहृदः मित्राणि भवन्ति । शान्तः स्वभावो येषां ते शान्तस्वभावा अमलं स्वान्तं येषां ते अमलस्वान्ताः । शान्तस्वभावाश्च अमलस्वान्ताश्च, शान्त स्वभावामलस्वान्ताः । शान्ताः शीलवन्तो निर्मलचित्ताश्च । दुःखितस्य पीड़ितस्य दुःखदर्शनेन महत्दुःखं येषां ते दुःखितदुःखदर्शनमहादुःखाः । निवृत्त्यै निवारणाय उद्यतास्तत्पराः ।

हिन्दी टीका—पूजनीय पुरुषों की सेवा से सर्व सुख प्राप्त होता है । सदाचारी और सेवा तत्पर मनुष्य को प्रसन्न हृदय से लक्ष्मी प्राप्त होती है जो सारे जगत के मित्र हैं और शान्त स्वभाववाले, निर्मल चित्तवाले दूसरे को दुःखित, देखकर दुःखित होनेवाले, उसके दुःख को दूर करने में प्रयत्न करनेवाले महात्मा लोग पूज्य होते हैं ॥ ८८ ॥

भुजङ्गप्रयातम्—

जनानां स्वभावे पृथक्त्वं समेषां
गुणानां पृथक्त्वाद् गुणैरेव सर्गः ।
विलोक्यानुरूपं विरूपं नृणां वा
न कर्म प्रशंसेन्नवा गर्हयेच्च ॥८९॥

अन्वयः—समेषां जनानां स्वभावे पृथकत्वम् अस्ति तत्र हेतुः गुणानां पृथकत्वात् । गुणैरेवसर्गः । नृणां कर्म अनुरूपं विरूपं वा विलोक्य न प्रशंसेत् न वा गर्हयेच्च ।

सं० टीका—समेषान् सर्वेषाम्, जनानां लोकानाम् स्वभावे, पृथकृत्वम् भिन्नत्वमस्ति । कुतः गुणानां पृथक्त्वात् । गुणैः सत्वादिभिरेव सर्गः सृष्टिः भवति । तस्मात् गुणभेदेन स्वभावभेदः उचित एव । तस्मात् नृणां मनुष्याणां, अनुरूपम् योग्यं, विरूपं अयोग्यं वा, कर्म दृष्ट्वा न प्रशंसेत् न स्तुवीत । न वा गर्हयेत् न निन्देत् ।

हिन्दी टीका—सब लोगों के स्वभाव में भिन्नता है । क्योंकि सत्वादि गुणों के अलग-अलग होने से ही सृष्टि की रचना हुई है । अतः स्वभाव में भेद होना उचित ही है ॥ ८९ ॥

अतः लोगों के उचित अनुचित कर्म को देखकर प्रशंसा, स्तुति व निन्दा न करें ।

द्रुतविलम्बितं—

सकलजीवदयाव्रतधारणम्
करणवाजिकुमार्गनिवारणम् ।
स्वयमुपस्थितवस्तुसुमोदनं
व्रतमिदं लघु केशवतोषणम् ॥९०॥

अन्वयः—स्पष्टमेव ।

सं० टीका—सकलेषु जीवेषु दया एव व्रतं तस्य धारणम् । करणानि इन्द्रि-

याण्येव वाजिनः अश्वाः तेषां कुमार्गनिवारणम् कुत्सितपथनिवर्त्तनम् । स्वयं यदृच्छया, उपस्थितवस्तुभिः प्राप्तपदार्थैः, सुमोदनं स्वानन्दयुक्तत्वं, इदं व्रतं लघु शीघ्रं, केशवतोषणं भगवत्प्रसन्नकरणम् ।

हिन्दी भाषा—सब जीवों के ऊपर दया करना, सब इन्द्रियों को शांत रखना, यदृच्छा से स्वयं प्राप्त वस्तु से प्रसन्न रहना, यह व्रत भगवान् को शीघ्र ही प्रसन्न करता है ॥ ९० ॥

शार्दूलविक्रीडितम्—

मैत्रीं वाञ्छसि केनचिद् सह यदि त्याज्यं तदेतत्त्रयं,
रायोदानमभीप्सया च सुहृदे त्याज्यो विवादोऽमुना ।
वार्तालापमतीव तद्वनितया सार्धं जहीहिद्रुतम्,
त्यक्तेऽस्मिंस्त्रितये भवेद् दृढतरा मैत्री तव स्वस्तये ॥९१॥

अन्वयः—यदि केनचित् सहमैत्रीं वाञ्छसि, तदा एतत्त्रयं त्याज्यम् । किं तत्त्रयम्, अभीप्सया, सुहृदे रायोदानम् । अमुना सह विवादस्त्याज्यः, तद् वनितया, सार्धमतीव वार्तालापं द्रुतं जहीहि । अस्मिं स्त्रितये त्यक्ते सति तव स्वस्तये मैत्री, दृढतरा भवेत् ।

सं० टीका—यदि यर्हि, केनापि साकम्, मित्रत्वमिच्छसि, तदा, एतत् त्रयम् त्वया त्याज्यम् किं तत् त्रयम् ।

अभीप्सया पुनः प्राप्तुमिच्छया, सुहृदे मित्राय, रायः द्रव्यस्य, दानम्, अथ अमुना मित्रेणसह वादः विवादः त्याज्यः । तत् स्त्रिया, अतीव वार्तालापं जहीहि त्यज । अस्मिंस्त्रितये कारणत्रये त्यक्ते सति तव स्वस्तये कल्याणाय, दृढतरा मैत्री भवेत् ॥

हिन्दी टीका—यदि कोई किसी के साथ मित्रता करना चाहता है तो वह तीन बातों का त्याग कर दे । प्रथम पुनः प्राप्त करने की इच्छा से मित्र को पैसा न दे । उसके साथ वाद-विवाद न करे । उसकी स्त्री के

साथ एकान्त में विशेष वार्तालाप न करें। यह तीन काम करने पर मित्रता अत्यन्त पुष्ट और कल्याण कारक होगी ॥ ९१ ॥

उपजातिः—

यदानुगन्तुं ननु सज्जनानां पंथा महात्मन्,सकलो न शक्यः ।
तदाऽनुगम्यो हि यथात्मशक्ति सन्मार्गगामी न कदापि सीदेत् ॥९२॥

अन्वयः—सज्जनानाम्, पन्थाः, अनुगन्तुम्, हे महात्मन्! यदि सकलः, न शक्यः, तर्हि यथात्मशक्ति, अनुगम्यः, यतः, सन्मार्गगामी कदापि न सीदेत्।

सं० टीका—सज्जनानाम् महात्मनाम्, पन्थाः मार्गः हे महात्मन्! अनुगन्तुं यदि सकलः न शक्यः, तर्हि, यथात्मशक्ति = शक्त्यनुसारम् अनुगम्यः अनुगन्तव्यः। यतः, सन्मार्गगामी सतां मार्गे गच्छतीति तथोक्तः, कदापि न सीदेत् दुःखं न प्राप्नोति"।

हिन्दी टीका—हे महात्मन्! सत्पुरुषों के मार्ग के पीछे यदि पूरे नहीं जा सकते हैं तो शक्ति के अनुसार उसके पीछे जाना चाहिए। क्योंकि सत्पुरुषों के मार्ग में जाने वाला कभी दुःखी नहीं होता ॥९२॥

वंशस्थः—

अयं नृदेहोमरवर्यदुर्लभो ।
न कामभोगाय मलादवज्जनाः ॥
मिलन्ति कामाः सकलासु योनिषु ।
तपश्च कृत्वामृतमाप्नुयात् सुधीः ॥९३॥

अन्वयः—हे जनाः! अमरवर्यदुर्लभः अयं नृदेहः, मलादवत् कामभोगाय न, कामास्तु सकलासु योनिषु मिलन्ति हि। तपः कृत्वा सुधीः अमृतं आप्नुयात्।

सं० टीका—देवदुर्लभः अयं मनुष्यदेहः मलादवत् ग्रामसूकरवत्, कामभोगाय, विषयभोगाय नास्ति। कामाः विषयास्तु सर्वासु योनिषु मिलन्ति। तस्मात् तपः कृत्वा, सुधीः विद्वान् अमृतं मोक्षयम् आप्नुयात् प्राप्नुयात्।

हिन्दी टीका—हे मनुष्यों! देवताओं को भी दुर्लभ यह मनुष्य देह ग्रामसूकर के तुल्य विषयभोग के लिए नहीं है क्योंकि विषय पशु पक्षी आदि सभी योनियों में मिलते हैं अतः तपश्चर्या कर मोक्ष को प्राप्त करे ॥ ९३ ॥

वसंततिलका:—

न्यायालये भगवतः खलु कश्चिदस्ति।
नान्याय इत्यखिलवेदपुराणसिद्धम ॥
लोकेन्नपानवसनादिजदुःखभाजः।
केचित्समस्तधनयुक्तगृहाः कथं च ॥ ९४ ॥

अन्वयः—भगवतः न्यायांलये, खलु, कश्चिचित्, अन्यायः, न, इति, अखिलवेदपुराणसिद्धम, तर्हि, लोके केचित्, अन्नपानवसनादिजदुःखभाजः कथम् केचित्, समस्तधनयुक्तगृहाः कथं च।

सं० टीका—भगवतः परमेश्वरस्य, न्यायालये न्यायभवने, खलु इति निश्चयेन कश्चित् स्वल्पोऽपि, अन्यायः अनर्थः, न इति, अखिलवेदपुराणसिद्धम्। तर्हि लोके केचित्, अन्नपानवसनादिजदुःखभाजः अन्नदुग्धवस्त्रादिसंभवदुःखयुक्ताः, केचिच्च, सर्ववस्तुपरिपूर्णगृहाः कथं तर्हि अन्यायः प्रतीयते, इति प्रश्नः। तदुत्तरम् अग्रिमपद्ये ॥

हिन्दी टीका—भगवान् के न्यायालय में कुछ भी अन्याय नहीं है। यह बात सम्पूर्ण वेद शास्त्र से सिद्ध है। तब लोक में कोई तो अन्नपान वस्त्रादि से रहित होकर दुःखी है और कोई सम्पूर्ण वस्तुओं से भरे हुए घर वाले हैं। यह कैसे? ॥९४॥

वसंततिलका:—

नोपस्थितं भवति वस्तु किमप्यदत्तम्,
यत्प्राग् भवे जनुषि रातमिहैव लब्धम् ।
दैवानुसारि फलमश्नुत एव ना प्राग्,
जन्मन्यथ स्वकृतकर्म भवेच्च दैवम् ॥९५॥

अन्वयः—अदत्तं वस्तु किमपि उपस्थितं न भवति, प्राग् भवे जनुषि, यत् रातं तदेव, इह, उपलब्धम् । ना दैवानुसारमेव फलमश्नुते । प्राग् जन्मनि स्वकृतकर्म दैवं भवेत् ।

सं० टीका—अदत्तम् अवितीर्णम् किमपि वस्तु उपस्थितम् प्राप्तं न भवति । प्राग् भवे जनुषि पूर्वजन्मनि, यद् रातम् यत् किमपि दत्तम् तदेव इह अस्मिन् जन्मनि, उपलब्धं प्राप्तं ना पुरुषः दैवानुसारमेव भाग्यानुसारमेव, फलं सुखदुःखादिकं । अश्नुते = भुङ्क्ते । प्राग् जनुषि स्वकृतकर्म निजविहितकर्म दैवं भवेत् । दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः इत्यमरः ॥

हिन्दी टीका—बिना दिए हुए कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती । पूर्व जन्म में जो कुछ दिया जाता है वही इस जन्म में प्राप्त होता है । मनुष्य कर्मानुसार ही फल को प्राप्त करता है । पूर्व जन्म में किया हुआ कर्म भाग्य कहलाता है ॥ ९५ ॥

इन्द्रवज्रा:—

स्त्रीणां सतीत्वं नु तदैव तिष्ठे-
द्धेतुत्रयं सत्कथितं यदा स्यात् ।
स्थानं रहोना विफलो न कालो
न प्रार्थनाकर्तृनरश्च नूनम् ॥ ९६ ॥

अन्वयः—स्त्रीणां सतीत्वं तदैव तिष्ठेत्, यदा सत्कथितं हेतुत्रयं स्यात्। किं तत् हेतुत्रयं तर्हि, रहः स्थानं न, विफलः कालो न, प्रार्थनाकर्तृ नरश्च न, ।

सं० टीका—स्त्रीणां वनितानां, सतीत्वं पातिव्रत्यं, तदैव तिष्ठेत्, यदा, सता भगवता कथितं हेतुत्रयं कारणत्रयं भवेत्। तत् त्रयं दर्शयति। रहः एकान्तं स्थानं यथा न भवेत्। विफलो व्यर्थः कालो न भवेत्। प्रार्थनाकर्ता लम्पटः कामीपुरुषो न भवेत्।

तथा चोक्तं भगवता :—

स्थानं नास्ति क्षणो नास्ति, नास्ति प्रार्थयिता नरः,
तेन नारद ! नारीणां, सतीत्वमुपजायते ॥

हिन्दी टीका—स्त्रियों का पातिव्रत्य धर्म तभी रह सकता है जब भगवान् के कहे हुए तीन कारण पालन किए जायँ।

प्रथम कारण—स्त्रियों के लिए एकान्त स्थान नहीं होना चाहिए।

दूसरा कारण—उनके समय की बचत न हो अर्थात् किसी न किसी कार्य में हमेशा लगी रहे।

तीसरा कारण—कोई पुरुष प्रार्थना करने वाला, छेड़छाड़ करने वाला न होना चाहिए ॥ ९६ ॥

वसन्ततिलका—

गीर्ब्राह्मणं समुपगम्य बभाण चैतद्
भूदेव ! माव निधिरस्मि तवास्मि पूर्णः
मा देह्यसूयक शठान्नृजुमानवेभ्यो
यत्स्यामहं बलवती परिपूर्णसारा ॥९७॥

अन्वयः—गीः ब्राह्मणं समुपगम्य एतद् बभाण च। हे भूदेव। मा अत्र अस्मि तव पूर्णः निधिः अस्मि। असूयक शठान्नृजुमानवेभ्यो मा देहि। यत् अहं परिपूर्णसारा बलवती स्याम।

सं० टीका—गीः सरस्वती ब्राह्मणं समुपगम्य समीपमागत्य एतत् वक्ष्यमाणं बभाण उवाच। हे भूदेव! हे विप्र! मा मां अत्ररक्ष अस्मि अहम्। अस्मि इति अहं अर्थे अव्ययम्। तव ते पूर्णः परिपूर्णः निधिः कोशः। अस्मि भवामि। असूयक शठान्नृजुमानवेभ्यः निन्दकमूर्खासरलमनुष्येभ्यो मा देहि मा वितर। यत् यस्मात् अहं परिपूर्णसारा सरस्वती बलवती च स्याम।

हिन्दी टीका—विद्या ब्रह्मण के पास आई और बोली। हे! विप्र तू मेरी रक्षा कर, मैं तेरा खजाना हूँ। रक्षा कैसे होगी? मुझको निन्दक, मूर्ख और असरल मनुष्य को मत दो जिससे सारयुक्त बलवान होऊँ ॥ ९७ ॥

वंशस्थः—

कृतापकारेऽप्युपकारतत्परो
नरो नरे हृद्यमनो विलासवान्
समर्चयन् सर्वगतं समेश्वरं
समेति शं सर्वजनात्मतोषणात् ॥९८॥

अन्वयः—हृद्यमनो, विलासवान् नरः, कृतापकारेऽपि नरे उपकारतत्परः सन्, सर्वगतम्, समेश्वरम्, समर्चयन्, सर्वजनात्मतोषणात्, शं, समेति।

सं० टीका—मनसोविलासः मनोविलासः, हृद्योमनोविलासो यस्य नरः कृतापकारेऽपि कृतापकृतावपि, नरे मनुष्ये उपकारतत्परः सन्, सर्वगतं सर्वत्रव्यापकं, समेशं सर्वेश्वरं ब्रह्मादीनाम्, ईशम् प्रभुम्, समर्चयन् सम्मानयन्, सर्वजनात्मतोषणात् सर्वेषां जनानां आत्मनः परमेश्वरस्य, तोषणात् संतोषणात् शं सुखं समेति प्राप्नोति।

हिन्दी टीका—सुन्दर है चित्त जिसका ऐसा पुरुष अपकार करने वाले मनुष्य के विषय में भी उपकार करने वाला सर्वव्यापक परमेश्वर

को सम्मानित करता हुआ सम्पूर्ण जनों के आत्मा को संतोष देने से सुख को प्राप्त होता है ॥ ९८ ॥

वियोगिनी—

उपकारकदे नरे सुधीः, कुरुते प्रत्युपकारमाशु यः।
स सदैव शमेति चान्यथा पुरतस्तस्य ऋणी स दुःखभाक् ॥९९॥

अन्वयः—यः सुधीः उपकारकदे नरे आशु प्रत्युपकारं कुरुते स सदैव शम् एति। अन्यथा पुरतः तस्य ऋणी सः दुःखभाक्।

सं० टीका—विद्वान् उपकारेण कं सुखं ददाति इति तस्मिद् उपकारकदे अथवा उपकारकं उपकारकरं ददाति इति उपकारकदस्तस्मिन् कृतोपकारे नरे आशु शीघ्रं प्रत्युपकारं प्रत्युपकृतं कुरुते सः सुखं आनन्दं शम् एति प्राप्नोति। अन्यथा प्रत्युपकाराभावे पुरतो अग्रे जन्मनि तस्य ऋणी दुःख भाक् भवति।

हिन्दी टीका—जो विद्वान् उपकार करने वाले मनुष्य के विषय में शीघ्र प्रत्युपकार करता है वह सुख पाता है नहीं तो अगले जन्म में उसका ऋण देने के लिए दुःख भोगता है ॥ ९९ ॥

वसन्ततिलका—

नामास्यतो भगवतो न नरो ब्रवीति,
थूत्कारमास्यविवरेस्य किरन्ति देवाः।
रामाभिधानममृतं प्रविहाय मोहान्-
मत्तो निरर्थवचनाहि विषाख्यमत्ति ॥१००॥

अन्वयः—यः नरः आस्यतः, भगवतो नाम, न ब्रवीति अस्य, आस्यविवरे, देवाः थूत्कारं किरन्ति। कुतः रामाभिधानम्, अमृतं मोहात् प्रविहाय, मत्तः सन्, निरर्थवचनाहिविषाख्यमत्ति ॥१००॥

सं० टीका—यः पुरुषः, आस्यतो मुखतः परमेश्वरस्य नाम न वक्ति। अस्य पुरुषस्य, आस्यविवरे मुखछिद्रे देवा थूत्कारम्। लालास्रावम् किरन्ति

प्रक्षिपन्ति । कुतः, रामाभिधानम् रामनामरूपम् अमृतम् मोहात् मौर्ख्यात् प्रविहाय त्यक्त्वा, निरर्थवचनमेव सर्पविषनामकम्, अत्ति भक्षयति ॥१००॥

हिन्दी टीका—जो मनुष्य अपने मुख से भगवान् का नाम नहीं लेता है उसके मुख में देवता लोग थूकते हैं। क्योंकि वह राम नाम रुपी अमृत को मूर्खता से त्यागकर निरर्थक वचन रूपी सर्पविष को भक्षण करता है ॥१००॥

शार्दूलविक्रीड़ितम् —

पद्यानां शतकम् मया विरचितं सर्वेश्वरप्रीतये,
भक्तिज्ञानविरागनीतिविषयम् लोकोपकारक्षमम् ।
विद्वन्मानसतोषणं सुबुध विद्यार्थिप्रियं सुन्दरम्,
छन्दोभिर्विविधैर्विचित्रितपदं शब्दैश्च भूषाप्रदैः ॥१०१॥

शार्दूल विक्रीड़ितम्—

भक्तिज्ञानविरागनीतिविषया, वेदागमापूरिता-
स्तद्बोधोऽल्पमतेः कथं प्रभवितुं शक्योऽनधीतस्य मे ।
सत्संगात् गुरुसेवया किमपि तत् संक्षेपसारान्विताः
यावच्छक्ति नभः पतन्ति बिहगास्तद्वन् मया वर्णिताः ॥१०२॥

शार्दूल विक्रीड़ितम्—

अक्ष्णोर्मौक्तिकविन्दुतो न लिखितुं द्रष्टुं मया शक्यते ।
तस्मादन्यकरांकितान्यपठितान्यालोचितं मुद्रितम् ॥
अत्राशुद्धिपरंपरा यदि भवेत् क्षम्या विपश्चिद्वरैः ।
साराऽसारविवेकिनो बुधवराः सारामृतास्वादिनः ॥१०३॥

वसंततिलका—

शैलेन्दुखाक्षिमितविक्रमवत्सरे च,
चैत्रेऽसिते हरितिथौ पृथिवीजवारे ।
दाधीचपंडितविनिर्मितमद्यपूर्णम्,
सद्धृद्यपद्यशतकम् भगवत्प्रसादात् ॥१०४॥

इति शतकम् समाप्तम् ॥

परिशिष्ट

उपजातिः—

सर्वं जगन्नश्वरमेव नित्यम्
पुनः पुनश्चेतसि चिन्तयेच्च ।
न तस्य शोको न मदो न मोहो,
भवेत् कदापि प्रविचारयोगात् ॥१॥

अर्थ—संपूर्ण जगत् नाशवान् है। यह नित्य अपने हृदय में बार-बार विचार करे उसको इस श्रेष्ठ विचार के योग से शोक, मोह, मद कुछ भी नहीं होगा ॥ १ ॥

वंशस्थः—

अकारि दुष्कर्म मया किमद्य वा,
सुकर्म नित्यं सुविचारपूर्वकम् ।
विलिख्य संख्यां तनुतां नयेदसत्,
सदेधयेत् स्वात्मनि सत्यमाश्रयन् ॥२॥

अर्थ—आज मैंने कितने बुरे कर्म किये एवं कितने शुभ कर्म किए यह सुविचार कर दोनों की संख्या को अलग-अलग लिखे अपने आत्मा में सत्यता को रखकर, झूठ कपट से न लिखे। आज मैंने कितना झूठ बोला, किसकी आत्मा को दुःख दिया इत्यादि क्या बुरा कार्य किया अथवा क्या सत्कर्म किया वह भी मन की सचाई से पृथक्-पृथक् संख्या में लिखकर किये हुए कर्म की संख्या को प्रतिदिन कुछ करने का प्रयत्न करे और सत्कर्म की संख्या को बढ़ावे ॥ २ ॥

बसंततिलका:—

स्वान्त स्मराशु सुचिरं हरिपादपद्मम्
चान्तं समेष्यसि यदाश्रयतो भवाब्धेः।
साहाय्यमात्मजमुखा न परत्र कर्तुम्,
शक्ता विलोकय जगन्मृगनीरतुल्यम् ॥३॥

अर्थ—हे चित्त निरंतर भगवान् चरणारविन्द का शीघ्र स्मरण कर जिसके आश्रय से संसार समुद्र से पार हो जायगा। पुत्रादिक परलोक में सहायता करने के लिए समर्थन होंगे। यह सारा संसार मृगतृष्णा के समान समझो ॥३॥

वसन्ततिलका वृत्तम्—

रूपाकृतिस्वररुचिप्रकृतिप्रभिन्ना,
नानाविधावयवभेदविभिन्नदेहाः।
रागैरनेकविधचित्रविचित्रिताया
ईदृग्विधाः सुरचना रचयन्त मीडे ॥ ४ ॥

अर्थ—जिस प्रभु ने सृष्टि में असंख्यात जीवों का रूप, आत्मा और आकृति भी भिन्न, स्वर भी भिन्न, रुचि भी भिन्न और स्वभाव भी भिन्न बनाया। सबके अवयव हस्तादादि (हाथ-पैर आदि) भी भिन्न होने से सब चित्र-विचित्र हैं। तथा सब के रंग भी भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। ऐसी अद्भुत रचना करने वाले उस प्रभु को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

शार्दूलविक्रीडित वृत्तम्—

यत्कार्यं स्वयमेव ना प्रकुरुते ज्ञातातिहृद्यं भवेत्,
कार्यंतान्यजनेन चान्य मनसा स्वेच्छानुकूलं न तद्।

यावच्छक्ति वलं विहाय रिपुमालस्यं शरीरस्थितम्,
कुर्यात् पौरुषहेतवे स्वतनुकृत्याद्यां बुधः स्वं सदा ॥५॥

अर्थ—स्वयं जानने वाला मनुष्य जो काम अपने आप करता है वह अत्यन्त सुन्दर होता है। अपने मन के अनुसार कार्य को न जानने वाला दूसरे के मन से जो मनुष्य कार्य करता है। वह अपनी इच्छानुसार नहीं होता। अतः शरीर के शक्ति के अनुसार देह में स्थित आलस्यरूपी शत्रु को त्यागकर अपने शरीर के कार्य को विद्वान् सदा स्वयं करें ॥ ५ ॥

शार्दूलविक्रीडित वृत्तम्—

विद्यामर्थकरीं पठन्ति सुधियस्तेर्थं लभन्तेऽनिशम्,
ज्योतिषशास्त्रपुराणकर्मरचनायुर्वेदमंत्रादिकाम्।
ये स्वल्पार्थकरीमधीत्य विपुलं वाञ्छन्ति विद्यांधनम्,
ते स्वल्पार्थयुता व्ययार्थरहिताः क्लिश्यन्ति सुज्ञा अपि ॥६॥

अर्थः—जो विद्वान् ज्योतिष शास्त्रादिक धन देनेवाली विद्याओं को पढ़ते हैं। वे सदा धन को प्राप्त करते हैं। जो अल्प धन देनेवाली विद्या (व्याकरणादि विद्या) को ही पढ़ते हैं। और इसको पढ़कर अधिक धन की इच्छा करते हैं। वे स्वल्प धन युक्त खर्च के लिये पैसे से हीन विद्वान् भी क्लेश प्राप्त करते हैं ॥ ६ ॥

उपजातिवृत्तम् —

धनं शुभे कर्मणि यस्य लग्नं,
पात्राय वा दीनजनाय दत्तम्।
धनं च तत् सत् सफलं प्रशस्तं,
मन्यत्कदर्यद्रविणेन तुल्यम् ॥ ७ ॥

अर्थः—जिस पुरुष का द्रव्य अच्छे काम में लग गया अथवा निर्धन सत्पात्र के लिये दिया गया। वह द्रव्य श्रेष्ठ और सफल है। और तो (दूसरा धन) कृपण के धन के तुल्य (समान) है ॥ ७ ॥

द्रुतविलम्बित् वृत्तम—

सुखदमह्नि कजं विदधे विधि-
निंशि मुदावह मिन्दु मतः परम्।
दिवस रात्रि कदं च रसागमम्,
विबुधराड्भवति क्रमशोजनः ॥ ८ ॥

अर्थः—ब्रह्मा ने दिन में सुख देनेवाले कमल को पहले बनाया। फिर रात्रि में सुख देनेवाले चन्द्रमा को बनाया। इन दोनों के बनाने के बाद रातदिन सुख देनेवाला रसागम बनाया। तब कहते हैं कि पहले रसागम क्यों नहीं बना दिया? तो कहते हैं कि मनुष्य क्रम से अति विशेषज्ञ होता है ॥ ८ ॥

आर्यावृत्म—

उपकृतवति सत्पुरुषे प्रत्युपकारं न योऽबुधः कुरुते।
तद् ऋणी पुरतो दातुं जनि मादत्ते नरो मौढ्यात् ॥ ६ ॥

अर्थः—जो अज्ञानी पुरुष उपकार करनेवाले के विषय में प्रत्युपकार नहीं करता वह उसका ऋण देने के लिये आगे जन्म लेता है ॥ ९ ॥

उपजाति वृत्तम

मानेप्सया नस्मयतो नवाऽयं,
नरायमाप्तुं रचितो निबंधः।

अधीति कालेऽल्प वयस्त एवे,

शानुग्रहा दत्र निसर्ग वृत्तिः ॥१०॥

अर्थः—मैने यह निबंध मान की इच्छा से नहीं रचा, न गर्व से न धन की इच्छा से। किन्तु बाल्यावस्था से ही कविता करने में भगवान् कृपा से मेरी प्रवृत्ति है।

उपजाति वृत्तम—

तवाभिधानं जपतो ममेदं,

रूपं त्वदीयं स्मरतो वपुश्च।

पञ्चत्व माप्नोत्व विमुक्त एवे

श प्रार्थये दीन दयानिधे त्वां ॥११॥

भगवान् से प्रार्थना

अथः—आपका नाम जपते हुए, और आपके रूप का स्मरण करते हुए काशी में ही मेरा शरीर-पात हो। हे नाथ आप से यह प्रार्थना है ॥११॥

वंशस्थ—

यदा स्वनिघ्नं द्रविणं नु रन्ति के,

तदा यथेष्टं वितरेद् विदुत्तमः।

सुता ह्यधीनेतु धने न दापने,

प्रभुर्भवेत् यत् परतंग वित्तवान् ॥१२॥

अर्थः—जब तक धन अपने आधीन हो विद्वान तब तक यथेष्ट दान करे। स्त्रियादि के अधीन धन होने पर दिलाने में समर्थ नहीं हो सकता। क्योंकि पराधीन धन होने से। ॥१२॥

शतक में आये हुए छन्दः

(१) अनुष्टुप
(२) रथोद्धता
(३) शालिनि
(४) मालिनी
(५) शिखरिणी
(६) वसंततिलका
(७) वंशस्थ
(८) इन्द्रवज्रा
(९) उपेन्द्रवज्रा
(१०) उपजाति
(११) दोधक
(१२) शार्दूलविक्रीडित
(१३) वियोगिनी
(१४) पुष्पिताग्रा
(१५) पंचचामर
(१६) गोपीगीतवत्
(१७) हरिणी
(१८) पृथिवी
(१९) आर्या
(२०) द्रुतविलम्बित

भजन नं० १

श्री गणेश स्तुति

प्रथम नमो वरद् गिरिश नन्द को
वोहि हरेगें हृदयतिमीर फन्द को ।। टेक ।।
गिरिजा सुत कविवर नुत मंगलमय रूप
वन्दित शुभ चरण कमल नर मुनी सुर भूप ।। प्रथमनमो ।।
लम्बोदर मोदक कर सेवक भयहारी
भालचन्द्र विगत तन्द्र स्मृति जन सुखकारी ।।प्रथमनमो।।
एक रदन सिद्धि सदन पीत वसन धारी,
विमल धिषण विशद् चरण मूषक रथचारी ।। प्रथम ।।
करीवर मुख वितर सु सुख हृदि शम दम आवे।
नाथ राम शरण गहत भव भय मिट जावे ।।प्रथमनमो।।

भजन नं० २

हरिगुण महिमा

तर्जः—(जयरघूराई जय जय)

हरिगुण गावो गावो सब जन· मनसे भव तरणे हित
हरिगुण गावो गावो ।। टेक ।।
जिसके गुण का अंत न आवे, नेति नेति करिवेद बतावे,
मति अनुसारहि ताहि मनाओ ।। हरिगुण गावो गावो ।।
जिसने सारा जगत बनाया अनुपम वेद हुकुम फरमाया
निशी दिन उसका ध्यान लगाओ ।। हरिगुण गावो गावो ।।
वर्ष सहस्र योगि हि नही पावे, संयम योग समाधि लगावे,
प्रेम भक्ति करी ताहि को पावो ।। हरिगुण गावो गावो ।।
नाथराम शुभ थूनि लगाओ, लाख मूल लव भी न गमाओ
मन वांछित सबहि फल पाओ ।। हरि गुण गावो गावो ।।

भजन नं० ३

भजन वेदांत का

भूल कर निज रूप को वेभान क्यों तू हो रहा,
फसके चक्कर में अविद्या के तू गाफिल सो रहा ॥ टेक॥
ओरहि भ्रम से समझता आपको तू आप है
रात्रि में तू देखता रज्जू को मानो साँप है ॥१॥ भूल० ॥
नित्य अद्वय सच्चिदानंद क्षेत्रवित् खुद आपके,
होते हुवे भी पड़ रहा क्यों फन्द में संताप के ॥२॥ भूल० ॥
ओर के कर्मों को खुद मे मानता है जिस लिये
पड़ रहा भव गर्त मे निर्दोष भी तू इसलिये ॥३॥ भूलकर,
देखकर माभाया खिलौना स्वप्न सम जगजाल तू
मोह मदिरा पी गिरा मद्मत्त हो वेहाल तू ॥४॥ भूल० ॥
याद कर निज रूप को, तज कर हृदय की मूल को
नाथ राम सदा भजन कर काट दे भव भूल को ॥५॥ भूलकर०॥

भजन नं० ४

जीव कर्तृक गर्भस्तुति विषयक भजन

श्रीराधाकृष्ण रटते तुझको आता है क्या जोर,
पैसा व कोड़ी पास से लगता नहीं है तोर ॥ टेक ॥
अंतरा:—किया था गर्भवास में पहिले ईश्वर से कोल,
बाहिर निकालो गर्भ से मन लावें तुमरी ओर ॥ १ ॥ श्रीराधा०॥
बाहिर पड़ तेहि गर्भ से हरी याद न रहा,
भौंचक हो करके जीव ने देखा दुनियां का शोर ॥ २ ॥ श्रीराधा०॥
बालकपने की जिन्दगी खेल में खो दयी,
जोबन में कामवश हुआ नहीं कामिनी से कोर ॥ ३ ॥ श्रीराधा०॥

वृद्धावस्था में चिंता से दुख पाकर मर गया,
मूरख ने वादा खो दिया किया न कुछ भी गोर ॥ ४ ॥ श्रीराधा०॥

मानुष तन पाकर जिसने हरी को नहीं भजा,
अपराधी है वह पापी है ईश्वर के घर का चोर ॥ ५ ॥ श्रीराधा०॥

अविद्या निद्रादेवी के वश होकर सो रहा,
विद्या का शरण ले ले मूरख होवे जल्दी भोर ॥ ६ ॥ श्रीराधा०॥

दायमा नाथुराम यह कहे कर जोर,
भव से हरी तारो पार मुझे तोरे कर में डोर ॥ ७ ॥ श्रीराधा०॥

भजन नं० ५

विषय त्यागार्थ उपदेशक भजन

तुम्हारा जन्म यह मनुजों सदा तप के लिये ही है ॥ टेक ॥

अंतराः—विषय तत्काल सुन्दरता जो देते हैं वे आखिर में
भुजग समरूप धरकर नाश करने के लिये ही है ॥१॥ तु०॥

जो दुर्लभ है सुरों को भी न खोओ व्यर्थ इस तन को
क्षणिक सुख भोगवश होकर यह मुक्ति के लिये ही है ॥२॥ तु०॥

सुखी विषयों से हम जैसे हैं पशुपक्षि भी वैसे ही,
यही हममें अधिक गुण आत्मचिंतन के लिये ही है ॥३॥ तु०॥

पिता माता तनुज जाया जो कहते हैं मेरा-मेरा
मृषा मृग तृषणिका के सम ये स्वारथ के लिये ही है ॥४॥ तु०॥

करो गुणगान उस प्रभु का मनुज तनु है दिया जिसने
पतितपावन अवधपती रामभजने के लिये ही है ॥५॥ तु०॥

भवन सम मानकर टेका लगा नंदलाल थूना का।
अनश्वरता मिले जिससे परमपद के लिये ही है ॥ ६ ॥ टेक

भजन नं० ६

मुमुक्षु प्रार्थना

भव पाश छुडादे तू मेरी कृष्ण मुरारे
आया हूँ शरण दीन दुःखी नाथ तिहारे ॥ टेक ॥

अंतराः—माया ने तेरी नाथ मुझे बहुत सताया।
फिर फिर चौरासी लक्ष योनि चक्र दिखाया
अब दूर करो इसको प्रभो प्राण पियारे
आय हूँ शरण.........॥ १ ॥ ॥ १ ॥

जबसे जुदा हूँ आपसे तबसे न चैन है,
विषयों की अंधेरी घटा से दिन भी रैन है।
करके प्रकाश हृदय गुहातम को नशा रे
आया हूँ शरण ॥ २ ॥

तेरी छबि को देखने की लगन लग रही,
मानस विहंग को न शान्ति मिल रही कहीं
तेरा अनूप सुभगरुप शीघ्र दिखा रे,
आया हूँ शरण ॥ ३ ॥

शरणागतों का कष्ट हरण तव स्वभाव है,
दीनों पे दया करने का भी पूर्ण भाव है,
मेरी पुकार सुनो दयालु करके दया रे
आया हूँ शरण ॥ ४ ॥

तेरे बिना न आसरा मुझ को प्रभो कहीं
अवगुण भरे हैं मुझ में जिनका पार ही नहीं
अवगुण न नाथ राम मेरे आप निहारें
आया हूँ शरण ॥ ५ ॥

भजन नं ७

रमा नाथ मोहन कृपा कर कृपालो
अशरण को चरण की शरण मे लगालो ॥ टेक ॥
महाकाल • विकराल बल के कवल से
भयातुर भ्रमी को अनातुर बनालो ॥ १ ॥ रमा०॥
भयाकार संसार सागर में नौका,
विषय वायु से डूबती को बचालो ॥ २ ॥ रमा०॥
दुराचार संचार मालिन्य मन को
सीखा कर सदाचार निर्मल बनालो ॥ ३ ॥ रमा०॥
अभय धाम जगमें मिला न कहीं भी
बिना आपके दीन बन्धो दयालो ॥ ४ ॥ रमा०॥
मिटा कर अविद्या हृदय गाढ़ तम को
प्रभो नाथ राम तुम्हारा बनालो ॥ ५ ॥ रमा०॥

भजन नं ८

सुनलो सुनलो प्रभों अर्ज दीनकी रे,
खोटे कर्मों से मोटे कमीन की रे, ॥ टेक ॥
अंतराः—कोलकर आया उदर में मातके तव ध्यान का
दुःखमय जीवन जगत से छूटने को ज्ञान का
भूले पागल मनीषा विहीन की रे ॥ सुनलो० ॥ १ ॥
संग दुरजन मन रहा सतसंग कुछ भाता नहीं
ज्ञान की चर्चा हृदय में भूल कर लाता नहीं
ऐसे दुरजन अनारि मति हीन की रे॥ सुनलो० ॥ २ ॥
क्रोध अरु दारुण कुटिल खल काम के वश में हुआ
आत्मधन खोकर विवश जग में रहा भी है मुआ
ऐसे पापी कुकर्मी मलीन की रे ॥ सुनलो० ॥ ३ ॥

प्राप्त कर अनमोल धन अपवर्ग साधन मनुजतन
मूर्ख जो खोता वृथा सच मान कर सुत दारजन
ऐसे आत्माभिघाती कर्महीन की रे ॥ सुनल० ॥४॥
नाथ राम करो दया अति दीन निर्बल जानकर
दूर कर ममता अहँता प्रेम पद का दान कर
ये ही बिनती सब साधन हीन की रे ॥ सुनलो० ॥ ५ ॥

भजन नं० ९

कृष्णजन्म विषयक भजन

नंद दुलारा जी की सब मिल करके जय जय बोलो ॥टेक॥
भादव अष्टमी पख अंधियारा, अर्धरात्र घन गरजत कारा।
ता दिन प्रकटे नन्द दुवारा, देवकी नंदन कृष्ण पियारा ॥१॥
ब्रह्मादिक सुरवृन्द पधारा. मन्त्रस्तुति जय शब्द उचारा।
जय हो कृष्ण कन्हैया मोहन, मुरलीधर मधुनाशन हारा ॥२॥
भूभर हारा दुष्ट संहारा, सारे जग का सरजन हारा।
भव भय हारा एक सहारा, श्री मुकुन्द महाराज हमारा ॥३॥
मानुष तनु भ्रिह मूल्य अपारा, बिन हरि भजनं नशाय गँवारा।
नाथ राम शुभ धूनी लगाकर, लाख मूल लव लेश न हारा ॥४॥

भजन नं० १०

शंकर की स्तुति (महाड़में)

शिवशंकर शम्भो दीन दयानिधे, सुनिये मेरी पुकार।
सुनिये मेरी पुकार ॥टेक॥
भवजल अतुल महाबलशाली, मीन विषय भयकार।
ता से तारक आप महा प्रभो, भवतरी खेवन हार।
हे शिवशंकर शम्भो ॥

भोगी विषय भयानक मोंकुं, डषत हैं बारम्बार,
जब तक प्राण न जाय हमारो तब तक आय उबार ॥हे शिव॥
पाप पिटारी धारक हूँ मैं तुम हो पाप निवार,
तारे हैं अगणित पापी भी तुमने, तनिक मुझको भी तार ॥हे शिव॥
नाम भवाब्धि विनाशक ते, ज्यों थूथा दद्रू विदार,
लाजा मंगल के सम मंगल, लक्ष करो मम पार॥ हे शिव

भजन नं० ११

(तर्ज—क्या भूलिया दीवाने)

श्रीकृष्ण कृष्ण रटते तुझको क्या जोर आवे
तुझको क्या जोर आवे ॥ टेक ॥

माया प्रपंचनी के फन्दे में फस के तूने,
सर्वस्व खो दिया है फिर भी न होश आवे ॥१॥
जिह्वा न है परायी लायी हुई किराये,
पैसा लगे न कोडी फिर क्यों न कृष्ण गावे ॥२॥
आयुष्य जा रही है छिन पल घड़ी घड़ी में,
जीमि नीर भग्न घटके वापस न हाथ आये ॥३॥
मन नाथ राम प्रभु की थूनि लगा के मन से,
लाखों के मूल धन का लव लेश न नशावे ॥४॥

कीर्तन के पद

(१)

तर्ज—वेदों की झलक से दुनिया को

मधुसूदन मोहन कंस निषूदन, केशव माधव कृष्णहरे
मुरलीधर गिरधर कृष्णहरे, नारायण मुरहर कृष्णहरे ॥ मधु० ॥

(२)

तर्ज—तेरी छकवल है न्यारी

नंद नंदन मुरारे कृष्ण मोहन बकारे
गोप गोपी यशोदानंदन श्याम।
श्याम श्याम श्याम ॥ नंदनंदन० ॥

(३)

तर्ज—गरभा की

श्रीहरे राधिकारमण प्रभो धेनुकारे
नृहरे देवकी वसुदेव नंदन कैटभारे ॥ श्रीहरे० ॥

(४)

तर्ज—रसिया की

जय जय राधाकृष्ण मुकुंद मनोहर नटवर नंदकिशोर।
जयजय नटवर नंदकिशोर, जयजय नटवर नंदकिशोर ॥जयजय राधा०॥
केशव माधव श्रीमधूसूदन कंस निषूदन कालिय मर्दन
धेनुक, बक, अघ नाशन वामन श्रीमुख चन्द्र चकोर ॥जयजय राधा०॥

(५)

तर्ज—सर्प ने मुझको डस लिया

कृष्ण गोविंद माधव नंद यशोदा नंदन। कृष्ण गोविंद माधव०॥
केशव माधवाचुत् दामोदरा वनीधर
धेनुक केशि सूदन कंसबकारी मर्दन ॥ कृष्ण गोविंद माधव०

(६)

(तर्ज—नन्हीं नन्हीं बूँदे रे)

राधाकृष्ण गोविन्द गोविन्द केशव मोहन
वसुदेव नंदन श्री यदुनंदन परमानन्द मुकुन्द गोपीजन मानस रंजन
॥ राधा ॥

(७)

(तर्ज—तिरछी नजरिया तेरी बाँकी नजरिया)

माधव कृष्ण राधे गोविन्द
राधे गोविन्द प्रभो राधे गोविन्द ।
वसुदेव नंदन देवकी रंजन
मदनमोहन प्रभो बालमुकुन्द ॥ माधव कृष्ण ॥

(८)

(तर्ज—चंदा दिखावेरी शावरिया को जसोदा ठाड़ी)

नंद नंदन प्रभो देवकी नंदन, बालमुकुन्द ।
केशव माधव श्री यदुनंद
मुरलीधर गिरिधर गोनंद
श्री राधानन सुखकर चँन्द्र
जगदानंद यशोदा नंद ॥ नंद नंदन प्रभो ॥

(९)

(तर्ज—माड़की)

रघुवंश शिरोमणे राघवराम रमाधव श्रीरघुनंद ॥ टेक ॥
श्रीरघुनायक देवसहायक सेवक श्रीसूरवृन्द
रूप मनोहर मन्मथ मोहन भक्तमहा सुख कंद ॥ हे रघुवंश शिरोमणे ॥

(१०)

(तर्ज—आज श्याम मोह लिनो बाँसुरि बजायके)

यादवेन्द्र कृष्णचन्द्र गोपनंद नंदन
गोपनंद नंदन श्रीगोप नंद नंदन ॥ यादवेन्द्र० ॥
देवकी मनो विनोद, देववृन्द जनित मोददुष्ट दैत्य विहितोद
राधिकादि रंजन ॥ यादवेन्द्र ॥

(११)

(तर्ज—निर्धन के प्राण पुकार रहे)

यदुनायक माधव सूरपते यदुनंदन रुक्मिणी प्राण पने
यदुवंश शिरोमणे कृष्ण विभो करुणार्णव पाहि भवार्णवतः
॥ यदुनायक ॥

कवि की संक्षिप्त आदर्श जीवनी

[जन्म विक्रम संवत् १९५३ वै० कृ० ७ शनिवार]

ले०—भवानीशंकर ओझा वकील बी. ए. एल. एल. बी.

कांकरोली (राजस्थान)

ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा के सुत दधीचि महर्षि के वंशज दाधीच कुलभूषण चतुर्भुजजी भेड़ाव्यास मेवाड़ भूमि में लावा सरदारगढ़ ग्राम में उत्पन्न हुए। आप आयुर्वेद, मन्त्रशास्त्र आदि के प्रौढ़ विद्वान् थे। अतः आमेटरावजी साहब चूण्डावत ने सम्मानपूर्वक सरदारगढ़ से आपको आमेट बुला लिया तथा कुछ जमीन भी आपको दी। आपके आत्मज रोडीदासजी के पुत्र श्रीरामजी व्यास हुए। इन्होंने दो विवाह किये। प्रथम पत्नी से दो कन्यायें हुईं। १५ वर्ष बाद वह स्वर्गलोक को चली गई। फिर इन्होंने दूसरा विवाह किया। इस पत्नी से एक कन्या तथा एक पुत्र हुए। पुत्र पाँच वर्ष का होकर स्वर्ग को चला गया। अब इनकी अवस्था ५० वर्ष की हो गई। पुत्र न होने से ये संसार से विरक्त रहते, भंग पीते तथा कुछ विशेष उद्योग नहीं करते थे।

महाराणा की दी हुई सरदारगढ़ में उनके पास कुछ जमीन थी। उसे गिरवी रखकर उन्होंने कन्याओं का विवाह किया। फिर उन्होंने पुत्र के लिए शंकर की उपासना की। फलतः एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र के जीवित न रहने से उक्त पुत्र का नाम नाथूराम रखा गया। मूल नक्षत्र में जन्म होने से ग्रहादि देखकर श्रीरामजी ने कहा था कि अब मेरा जीवन थोड़े समय का है। यह पुत्र ऐसा ही पैदा हुआ है। मैं ६ माह तक जीवित रहूँगा।

आपने बच्चे के मूलग्रह की शान्ति आदि विधान सब किये। आप ६ मास बाद स्वर्गवासी हुए। विधवा माता निर्धन घर में अत्यन्त कष्ट से चक्की पीसना आदि श्रम करके अपना तथा पुत्र का पालन-पोषण करती थी। वह अत्यन्त

भगवद्भक्त थी। भगवान् के सैकड़ों भजन उसे कण्ठस्थ थे। वह ५० चरणों का ध्रुवचरित गाया करती और चक्की पीसा करती थी। माँ की गोद में ५ वर्ष का नाथूराम लेटा हुआ ध्रुवचरित सुना करता था। उस समय वह बचा संसार से विरक्त-सा ज्ञात होता था।

नाथूराम जब ६ वर्ष का हुआ तब वह पढ़ने के लिए पाठशाला में प्रविष्ट हुआ। वह अत्यन्त मेधावी तथा सुशील था। अतः गुरुजन उस पर बहुत प्रसन्न थे। उसने डेढ़ वर्ष में ही प्राथमिक शिक्षा और हिन्दी की पहली पुस्तक समाप्त की। उसे शुद्ध लिखने तथा पढ़ने का अच्छा अभ्यास हो गया। अध्यापक कहते थे कि यदि यह बचा ३ वर्ष हमारे पास रहा तो हम इसे अध्यापक बना देंगे। ८ वें वर्ष उसकी माता भी स्वर्ग को सिधार गई। इस अनाथ बच्चे का कोई भी सहारा न था। उसने ४ वर्ष बहिन तथा मामा के पास रहकर कष्ट से जीवन व्यतीत किया।

तदुपरान्त भगवत्कृपा से आमेट निवासी सजातीय सुशिक्षित पं० जगन्नाथजी तथा नारायणजी जब काशी आये तो इनको भी साथ में लाये। यहाँ ये ८ वर्ष तक वेद, व्याकरण, काव्य तथा ज्योतिष आदि का अध्ययन कर पुनः मेवाड़ को प्रत्यावर्तित हो गये। तत्पश्चात् विद्याधन को ही मुख्य मानकर मेवाड़ निवासी श्रीजगन्नाथजी आचार्य की कन्या के साथ इनका विवाह सम्पन्न हुआ। इन्होंने वागली तथा शोलापुर में अध्यापन कार्य भी किया। इनसे दो कन्याएँ तथा एक शंकरलाल नामक पुत्र हुए। ८ वर्ष बाद इन तीनों सन्तानों की जननी परलोक को चली गई। कुशाग्र बुद्धि शंकरलाल २१ वर्ष की अवस्था में अविवाहित ही काव्यतीर्थ, आयुर्वेदाचार्य, मीमांसातीर्थ आदि परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर स्वर्गलोकवासी बना। श्रीनाथूरामजी ने पुत्रशोक से पीड़ित होकर भी भगवत्कृपा से शोक-मोहरहित होकर भगवच्चरणारविन्द में चित्त लगाकर संसार से विरक्ति प्राप्त की।

आप शोलापुर से बागली आये। वहाँ कुछ दिन भजन में व्यतीत कर ईश्वर प्रेरणा से लक्ष्मीनारायण जी के पुराने मन्दिर का १५००) रु० लगाकर

जीर्णोद्धार किया। तदनन्तर चारों धामों की यात्रा तथा गंगासागर आदि अनेक तीर्थ किये। तत्पश्चात् श्रीनाथद्वारा में ४ वर्ष रहकर श्रीमद्भागवत १०८ सप्ताह पारायण भगवान् को सुनाया। निष्काम व्यक्ति को शान्ति की आवश्यकता नहीं, किन्तु 'इस निमित्त से भगवत् सेवा हो जायगी' यह विचार कर खानदेश, हैदराबाद, शोलापुर, पूना, कर्णाटक आदि में सप्ताह और प्रवचन करके ४००० रु० लाकर नाथद्वारे में भागवत का दशांश १९४०० का हवन गायत्री मन्त्र से तथा विष्णुयज्ञ की आहुतियों का यज्ञ श्रीधर शास्त्री वारे, नासिक के जगत् प्रसिद्ध याज्ञिक के आचार्यत्व में सम्पन्न हुए। साथ ही सप्ताह-मण्डप में सप्ताह-कथा भी हुई। यज्ञ में किसी से भी द्रव्य की याचना नहीं की गई। यज्ञ सानन्द समाप्त हुआ।

मारकेश की दशा आ जाने से इन्होंने विचार किया कि यदि शरीर छूट गया तो जमीन, कुआँ, मकान आदि का दुरुपयोग होगा। इन्होंने जमीन को बेचकर प्राप्त २७००) रु० में से ३००) रु०, ३००) रु० दोनों कन्याओं के पुत्र आदि के विवाह में मायरे के लिए दो वैश्यों के पास रख दिये हैं। तदनन्तर इन्होंने २०००) रु० अपने पास से लगाकर श्री दीधचि कामधेनुशाला, वागली नामक गोशाले का निर्माण किया। इसके लिए आस-पास के गाँवों से ३०००) रु० एकत्रित हुए थे। इंगल की कैंची के ऊपर ६५ चद्दर, १० फुटी और ४०००० पक्की ईंटों से उक्त गोशाला बनी है। कूप के जीर्णोद्धार के साथ गोशाला के चारों ओर घेरे में तार लगाया गया तथा सीमेंट की प्याऊ भी बनायी गई है।

गायों के लिये शोलापुर आदि से ८००) रु० लाकर घास की जमीन बीड २० बीघे (१२½ एकड़) मोल लेकर आपने सरकार से रजिस्ट्री करवाई। हनुमानजी के मन्दिर में संवत् १९८१ में आपने तार के किवाड़ लगवाये। ग्राम बागली से २५०) रु० चन्दा कर हनुमानजी के सभामण्डप के ऊपर की चूने की गच्ची को उतार कर चद्दर लगवायी। शंकर मन्दिर पर इन्होंने ओटले की फर्शियें लगवाईं। इन्होंने पथवारी आदि अनेक काम किये। हनुमानजी की सेवा-पूजा के लिए ठकुरात से बन्दोवस्त बन्द हो जाने पर आपने दो दुकानें अपनी ओर से बनायीं। उनसे १५) रु० मासिक किराया आता है। उस

किराये में से ८) रु० मासिक पुजारी को तथा ७) रु० मासिक सेवा-पूजा, उत्सव आदि के लिए दिये जाते हैं।

गोशाला का कार्य ट्रस्ट के जिम्मे कर ट्रस्टडीड की रजिस्ट्री करवा कर आप इस समय काशी में निवास करते हैं। आप परान्न-प्रतिग्रह-त्याग के साथ काशी-वास कर रहे हैं। आपके १३ मकान तथा बाजार का बड़ा मकान बागली में है। आपने राजनियमानुसार रजिस्ट्री द्वारा यह व्यवस्था कर दी है कि जीवन-पर्यन्त उक्त मकानों का किराया हमें प्राप्त हो, बाद में १२ खोली तथा बाजार का बड़ा मकान गोशाला को मिले, १ खोली लक्ष्मीनारायण के मन्दिर को मिले, एक मकान जो जगदीश-मन्दिर के पास है, हमारे बाद बेच दिया जावे, जिससे प्राप्त रुपयों में से ४००) रु०, ४००) रु० दोनों कन्याओं को दिये जावें और शेष धन से बागली के साधुओं तथा ब्राह्मणों को भोजन करवा दिया जावे।

गोशाले का उद्घाटन १९५० ई० में हुआ था। तब से स्थायीकोश के अभाव में नौकर, ग्वाल आदि का खर्च चलाने के लिए कठिनाई होने पर वर्ष में माह, दो माह काशी से बागली जाकर इधर-उधर से ४००) रु० या ५००) रु० लाकर आप वार्षिक व्यय संभालते रहे हैं।

इस समय आप अत्यन्त वृद्ध हो गये हैं। आपकी आँखों में मोतियाबिन्द हो गया है। आपका शरीर क्षीण तथा बलहीन है। इस दशा में आपने ईश्वर से प्रार्थना की कि हे ईश्वर अब मुझसे गो-सेवा नहीं हो सकती है। मैं इधर-उधर भ्रमण भी नहीं कर सकता तथा काशी छोड़ना भी नहीं चाहता हूँ। अतः आप अपनी वस्तु की स्थायी व्यवस्था करने की कृपा करें।

भगवान् ने आपकी प्रार्थना सुन ली। आपको ऐसी सुबुद्धि प्राप्त हुई कि आपने इस 'हृद्य-पद्य-शतक' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसका महत्त्व ग्रन्थ में दिया हुआ है। आपको दृढ़ विश्वास है कि उक्त पवित्र ग्रन्थ के मूल्य से गोशाला चिरकाल के लिए स्थिर रहेगी। भगवान् विश्वनाथ के चरणों में आपकी अन्तिम प्रार्थना है कि आपका शरीर-पात काशी में ही हो और आपका मानस भगवच्चरणारविन्द में निरन्तर लगा रहे।

मध्य-प्रदेश बागली में दो देवतारत्न

इन्दौर से १८ कोस पूर्व बागली तहसील में—

(१) हनूमानजी की बहुत रमणीय मूर्ति जो एक स्निग्ध उपल की बनी हुई, करीब ८ फुट ऊँची लम्बी खड़ी और ३ फुट चौड़ी जिसके दाहिने कन्धे पर राम-लक्ष्मण विराजमान हैं और बाँयें कन्धे पर संजीवनी पर्वत है, तथा दाहिने हाथ में गदा भी धारण की हुई है।

दोनों चरणों के नीचे ५ फुट की विशाल भयङ्कर एक राक्षसी दबी हुई है! इनके केवल एक चरण पर ही सिन्दूर लगता है तथा अन्य उप-प्रत्यंग चित्रित होते हैं।

(२) श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान् की मूर्ति जो गरुड़ के ऊपर विराजमान हैं, ऐसी मूर्ति चारों धामों में कहीं भी देखने में नहीं आई।